शोधादर्श

८१

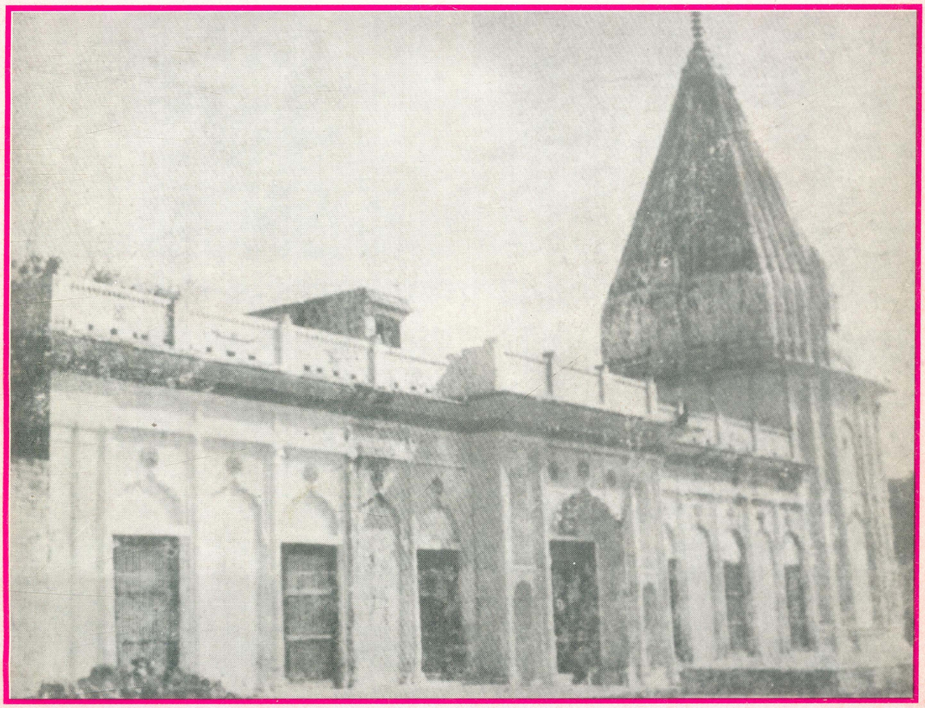

अयोध्या के कटरा मोहल्ले में दिगम्बर जैन मन्दिर

तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उत्तर प्रदेश, लखनऊ

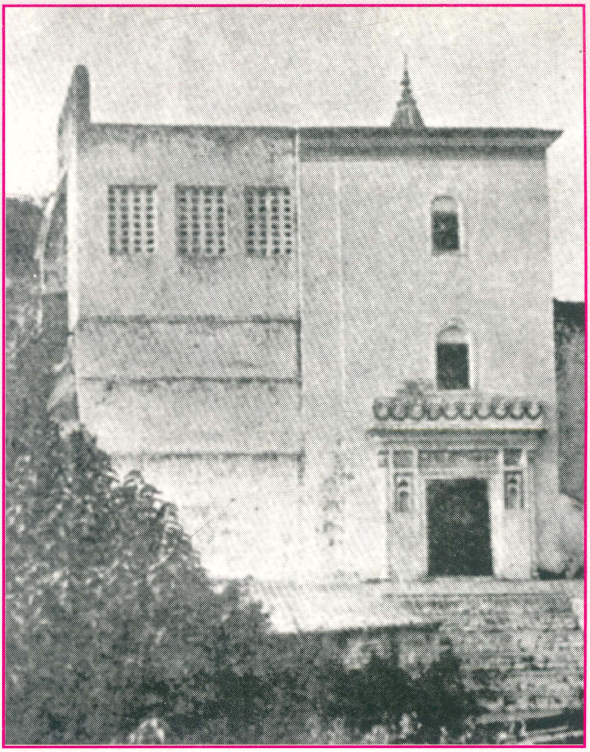

भगवान आदिनाथ जन्म-स्थान टोंक

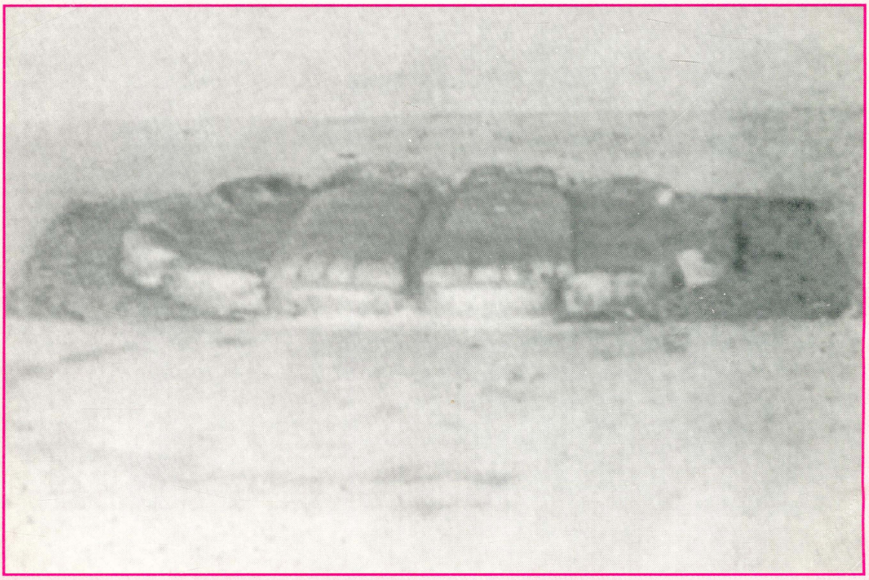

चरण-चिन्ह - श्री आदिनाथ टोंक

आद्य सम्पादक : (स्व.) डॉ. ज्योति प्रसाद जैन
पूर्व प्रधान सम्पादक : (स्व.) श्री अजित प्रसाद जैन
पूर्व सम्पादक : (स्व.) श्री रमा कान्त जैन
मार्गदर्शक : डॉ. शशि कान्त
सम्पादक : श्री नलिन कान्त जैन
सह–सम्पादक : श्री सन्दीप कान्त जैन
: श्री अंशु जैन 'अमर'
: सौ. डॉ. अलका अग्रवाल

प्रकाशक

तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उ.प्र.

ज्योति निकुंज, चारबाग, लखनऊ–226004, टेलीफोन सं. (0522) 2451375

ई–मेल : shodhadarsh@gmail.com

णाणं णरस्स सारं – सच्चं लोयम्मि सारभूयं
ज्ञान ही मनुष्य जीवन का सार है
सत्य ही लोक में सारभूत तत्त्व है

शोधादर्श - 81

वीर निर्वाण संवत् 2541 जून 2015 ई.

विषय क्रम

1	सम्पादकीय	श्री नलिन कान्त जैन	5–6
2	जिनवाणी–वन्दना (पद्य)	श्री रमा कान्त जैन	6
3	गुरुगुण–कीर्तन अपभ्रंश भाषा के साहित्यकार धनपाल	श्री वेद प्रकाश गर्ग	7 –15
4	करे अमल जो उसकी जय–जयकार है	डॉ. ज्योति प्रसाद जैन	15
5	अयोध्या	डॉ. ज्योति प्रसाद जैन	16–21
	(टिप्पणी : बाबरी मस्जिद	डॉ. शशि कान्त)	21
6	भगवान ऋषभ और अयोध्या	श्री जी.डी. तपासे	22–24
7	जैन धर्म के मूल तत्त्व	श्री अजित प्रसाद जैन	25–28
8	नारी की मर्यादा	श्रीमती मंजरी जैन	29–32
9	अब तक सुख–दुख की परिभाषा भाषित कर न सके (पद्य)	श्री कृपा शंकर शर्मा 'अचूक'	32

10	जैन दार्शनिक चिन्तन	डॉ. शशि कान्त	33–34
	The Jain Speculative Thought		34–35
11	अहिंसा व्रत सर्वोत्तम (पद्य)	डॉ. परमानन्द जड़िया	35
12	**Evolution of the Jina Image**	डॉ. राम कुमार दीक्षित	36–39
13	**Success (Poem)**	आयु. संचिता मित्तल	40
	Holi (Poem)		
14	बीस न तेरा : आगम पंथ मेरा	श्री सुरेश जैन 'सरल'	41–43
	(टिप्पणी : जैन समाज की एकता	डॉ. शशि कान्त)	43
15	तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति प्रगति प्रतिवेदन (2014–15)	श्री नलिन कान्त जैन	44–47
16	साहित्य सत्कार	डॉ. शशि कान्त	48–58

प्राकृत आगमों एवं प्राकृत के अन्य
जैन ग्रन्थों से सम्बन्धित आलेख;
जैन धर्म एवं साहित्य का संक्षिप्त इतिहास;
जैन आचार मीमांसा; जैन तत्त्व मीमांसा;
जैन ज्ञान मीमांसा; करणानुयोग प्रवेशिका;
संस्कार सुमन; धर्ममंगल : कर्म सिद्धांत,
सार्थ भक्तामर, कर्म रहस्य;
चिन्तन के आयाम; मध्यांतर;
जैन संस्कृति–सौरभ;
हिन्दी जैन व्रत–कथा साहित्य;
मैं ज्ञानानंदस्वाभावी हूं; गुणस्थान विवेचन;
जीव जागा – कर्म भागा;
ये हैं अबोध के नवीन छन्द;
आत्म जीवन परिचय;
भगवान महावीर का बुनियादी चिन्तन;
कल्याण मुनि और सम्राट सिकन्दर;
वन का पति वनस्पति; वैशाली के महावीर;
Mahavira of Vaishali; मनोनयन;
सर्वार्थसिद्धि परिशीलन; प्रतिष्ठा प्रज्ञ

17	आभार	58
18	अभिनन्दन	59–62
19	शोक संवेदन	62–63
20	समाचार विविधा	64–66

21 पाठकों के पत्र 67–71

श्री अजित प्रसाद जैन, डॉ. (श्रीमती) उषा जैन
डॉ. उषा माथुर, डॉ. ए.एल. श्रीवास्तव
श्री बी.डी. अग्रवाल, डॉ. परमानन्द जड़िया
प्रो. प्रकाश चन्द्र जैन, श्री मगन लाल जैन
डॉ. (श्रीमती) ममता जैन, श्री ललित कुमार नाहटा
श्री श्रीकिशोर जैन, पं. सरमन लाल जैन 'दिवाकर'

चित्र परिचय

कवर पृ. 1

अयोध्या के कटरा मोहल्ले में दिगम्बर जैन मंदिर

इस मंदिर में स्थित एक प्रतिमा की पाद–पीठ पर अंकित लेख में प्रतिष्ठा तिथि आषाढ़ सुदी 8 विक्रम सं. 1224 (=1167 ई.) का उल्लेख है, जो यह सूचित करता है कि वह 1194 ई. में शाहजूरन ग़ौरी के आक्रमण से पहले की है। विक्रम सं.1548, 1626 और 1781 के लेख भी हैं। ये लेख इस मंदिर की प्राचीनता को सूचित करते हैं। मंदिर का जीर्णोद्धार कार्तिक सुदी 13 वि. सं. 1956 (1899 ई.) में हुआ था। चित्र उसके वर्तमान स्वरूप का है।

कवर पृ. 2

भगवान आदिनाथ जन्म–स्थान टोंक

स्वर्गपुरी मोहल्ले में शाहजूरन के टीले पर स्थित मस्ज़िद के पृष्ठ भाग में यह टोंक एक बन्द कक्ष में स्थित है। ऐसी मान्यता है कि पूर्वकाल में इसी स्थान पर आदिनाथ भगवान ऋषभदेव के जन्म–स्थान का सूचक भव्य एवं विशाल जिन मंदिर था जिसका अपरनाम सम्भवतया स्वर्गद्वार जिनालय था। मोहम्मद गौरी के भाई मखदूम शाहजूरन ने 1194 ई. में अयोध्या पर आक्रमण के समय उस जिनालय को ध्वस्त कर उसके स्थान पर मस्ज़िद बना दी थी। कालांतर में एक चमत्कार के फलस्वरूप मुसलमान शासकों ने वहां जैनों को अपना चरण–चिन्ह युक्त मंदिर बनाने की अनुमति दे दी थी।

चरण–चिन्ह – श्री आदिनाथ टोंक उपरोक्त टोंक में ये चरण–चिन्ह स्थापित हैं। भूमि पर पग रखने से जो चरण–चिन्ह बनते हैं, ये उसके द्योतक हैं।

कवर पृ. 3

रायगंज में स्थित श्री आदिनाथ जिनालय का सिंहद्वार

पूर्वकाल में ''रानी का बाग'' के नाम से अभिज्ञात, अयोध्या के दक्षिणी क्षोर पर स्थित सुरम्य उद्यान के मध्य एक भव्य जिनालय का निर्माण 1965 ई. में सम्पन्न हुआ था। मूल नायक के रूप में भगवान आदिनाथ की 51 फुट ऊंची प्रतमा विराजमान है। मंदिर का सिंहद्वार दर्शनीय है।

आवश्यक सूचना

वार्षिक शुल्क 60 रु. (साठ रुपये), **'महामंत्री, तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उ.प्र.,ज्योति निकुंज,चारबाग, लखनऊ–226004'**, को 'तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति' के नाम लखनऊ में देय चेक अथवा ड्राफ्ट द्वारा भेजने का अनुग्रह करें। मनीआर्डर से भेजने पर उसकी सूचना एक पोस्टकार्ड पर भी अपने पूरे नाम व पते के साथ अवश्य भेजें। विदेशों के लिए पत्रिका का वार्षिक शुल्क 25 डालर है।

शोधादर्श अब षड्मासिक पत्रिका है और सामान्यतया इसके अंक जून–अन्त और दिसम्बर–अन्त में प्रकाशित होते हैं।

शोधादर्श में प्रकाशनार्थ शोधपरक एवं अप्रकाशित लेख आमंत्रित हैं। लेख कागज के एक ओर सुवाच्य अक्षरों में लिखित अथवा टंकित होना चाहिये और उसमें यथावश्यक सन्दर्भ/स्रोत सूचित किये जाने चाहियें। यथासम्भव लेख 3–4 टंकित पृष्ठ से अधिक न हो। लेख की एक प्रति अपने पास अवश्य रख लें। अप्रकाशित लेख–रचना लौटाना कठिन होगा।

शोधादर्श में प्रकाशित लेखों को उद्धरित किये जाने में आपत्ति नहीं है, परन्तु **शोधादर्श** का श्रेय स्वीकार किया जाना और पूर्ण सन्दर्भ दिया जाना अपेक्षित है।

प्रकाशनार्थ लेख और समीक्षार्थ पुस्तक/पत्रिका सम्पादक को **ज्योति निकुंज, चारबाग, लखनऊ–226004,** के पते पर भेजे जायें।

प्रत्यावर्तन में पत्रिका की केवल एक प्रति सम्पादक को उपरोक्त पते पर भेजी जाये।

लेखक के विचारों से सम्पादक मंडल का सहमत होना आवश्यक नहीं है। लेख में दिये गये तथ्यों और सन्दर्भों की प्रामाणिकता के सम्बन्ध में लेखक स्वयं उत्तरदायी हैं।

सभी विवाद लखनऊ में स्थित सक्षम न्यायालयों/न्यायाधिकरणों के क्षेत्राधिकार के अधीन होंगे।

सुधि पाठक कृपया अपनी सम्मति और सुझावों से अवगत करावें ताकि पत्रिका के स्तर को बनाये रखने और उन्नत करने में हमें प्रोत्साहन तथा मार्गदर्शन प्राप्त होता रहे। कृपया पत्रिका पहुंचने की सूचना भी देवें।

– **सम्पादक**

सम्पादकीय

शोधादर्श का **81वां** अंक सुधि पाठकों के उपयोग हेतु प्रेषित किया जा रहा है। विगत 29 वर्षों से इसका नियमित प्रकाशन हो रहा है। इसमें स्तरीय शोध सामग्री के साथ ही समाज को जागरूकता प्रदान करने सम्बन्धी आलेख भी प्रकाशित किये जाते हैं। इसकी उपयोगिता को दृष्टिगत रखते हुए Indian National Scientific Documentation Center से ISSN प्रदान किये जाने के लिए पत्राचार किया जा रहा है और शीघ्र ही इसके प्राप्त होने की आशा है।

हमारी समिति के संस्थापक महामंत्री श्रद्धेय श्री अजित प्रसाद जैन के जन्मदिन और पुण्यतिथि पर समिति की बैठक करके उन्हें श्रद्धासुमन अर्पित किये जाते हैं। इस पत्रिका के संस्थापक और आद्य सम्पादक श्रद्धेय डॉ. ज्योति प्रसाद जैन तथा पूर्व सम्पादक स्मृतिशेष श्री रमा कान्त जैन के जन्मदिन और पुण्यतिथि पर स्मृति गोष्ठी का विशेष आयोजन किया जाता है। उक्त श्रद्धेय महानुभावों के जीवन और कृतित्व से प्रेरणा लेकर ही हम इस पत्रिका को नियमित रूप से प्रकाशित कर रहे हैं।

समिति द्वारा विद्यार्थियों को आर्थिक सहायता प्रदान की जाती है जिसका उल्लेख वार्षिक प्रतिवेदन में किया जाता है। यह छात्रवृत्ति प्राप्त करने के लिए निर्धारित प्रपत्र पर आवेदन किया जाना अपेक्षित है। आवेदन पत्र विद्यार्थी द्वारा स्वयं अपने हस्तलेख में भरा जाना चाहिए और वह उस संस्था के प्रधान द्वारा प्रमाणित व अग्रसारित किया जाना चाहिए जहां विद्यार्थी शिक्षारत है। आवेदन पत्र 5/– के टिकट लगे और पता लिखे लिफाफे को भेज कर प्राप्त किया जा सकता है। आवेदन पत्र 30 सितम्बर तक भेज दिया जाना चाहिए।

निर्धन, अशक्त और विधवा महिलाओं के लिए आर्थिक सहायता देने का प्राविधान भी हमने किया हुआ है। आवेदन निर्धारित प्रपत्र पर स्थानीय समाज के प्रमुख द्वारा प्रमाणित होना अपेक्षित है। पिछले वर्ष कोई सज्जन अपने हस्तलेख से विभिन्न नामों से आर्थिक सहायता के लिए पत्र भेजते रहे। यह उन सज्जन का अनाधिकारिक कार्य है अतः उन पत्रों पर कोई विचार नहीं किया गया। हमारा निवेदन है कि कोई भी व्यक्ति इस प्रकार का अनाधिकारिक कार्य हमारी संस्था के निमित्त न करे। हमें

विश्वास है कि हमारे सुधि पाठक और समाज के जागरूक व्यक्ति हमारे इस निवेदन पर अवश्य ध्यान देंगे ताकि वास्तव में जरूरतमंद व्यक्तियों को सहायता दी जा सके।

हमारी संस्था के उपाध्यक्ष श्री महेन्द्र प्रसाद जैन तथा सदस्य श्री धनेन्द्र कुमार जैन और श्री हंसराज जैन दीर्घकाल से अस्वस्थ चल रहे हैं। उनके स्वास्थ्य लाभ के लिए हम निरन्तर प्रार्थना करते हैं।

पत्रिका के सुधि पाठकों ने अपने अभिमत से हमारा जो मनोबल बढ़ाया है उसके लिए हम उनके प्रति आभारी हैं। सम्पादक मण्डल के सहयोगी साथियों के प्रति भी मैं आभारी हूं।

नलिन कान्त जैन

30—6—2015 **सम्पादक**

✧✧✧

जिनवाणी—वन्दना

— (स्मृतिशेष) श्री रमा कान्त जैन

जय जय जय जिनवाणी मां
सब की है तू कल्याणी मां
तीर्थंकर मुख से निसृत हुई,
गणधरों द्वारा ग्रथित हुई मां।।1।।
जय जय जय जिनवाणी मां!

द्वादशांग वाणी कहलाती है तू
चार अनुयोग वाली चतुर्भुजा तू
विविध नय कल्लोल करते तुझ में,
अनेकान्त का पाठ पढ़ती तू।।2।।
जय जय जय जिनवाणी मां!

अज्ञान—तिमिर को हरती तू
सद्—असद् विवेक सुझाती तू
जो भी आवे शरण तिहारे,
हिय में मोद भरती तू।।3।।
जय जय जय जिनवाणी मां!
सब की है तू कल्याणी मां!!

✧✧✧

अपभ्रंश भाषा के साहित्यकार
धनपाल

- श्री वेद प्रकाश गर्ग

(काव्य शास्त्र के मर्मज्ञ आचार्य दण्डी, भामह और रुद्रट ने संस्कृत और प्राकृत के समान ही अपभ्रंश को भी काव्य की भाषा सूचित किया है। प्रायः 8वीं शती से 14वीं शती पर्यन्त जैन रचनाकारों ने अपभ्रंश भाषा को काव्यों से अलंकृत किया है। उस काल में धनपाल नाम के तीन कवि प्रसिद्ध है, जिनका विवरण इस लेख में है। – सम्पादक)

यों तो धनपाल नामक कई महानुभाव लेखक हुए हैं किन्तु जैन साहित्य में धनपाल नामक तीन विद्वान विशेष रूप से प्रसिद्ध हैं – प्रथम धनपाल जैन आम्नाय के थे और वह 10वीं शताब्दी में **'भविस्सयत्त कहा'** के लेखक थे। द्वितीय धनपाल मूलतः ब्राह्मण थे परन्तु बाद को जैन धर्मी हो गये थे; वह धारा के परमार नरेश भोज के सभा पण्डित थे और उनका समय 11वीं शताब्दी था। तृतीय धनपाल का जन्म अणहिल्लपुर के पल्लीवाल जैन कुल में हुआ था; उनका समय 13वीं शताब्दी था। धनपाल नाम के तीनों साहित्यकारों की अपभ्रंश भाषा में की गई रचनाओं का विशिष्ट महत्व है।

धनपाल (प्रथम)

सन् 1913–14 ई. में जर्मन विद्वान हर्मन जैकोबी को अहमदाबाद के जैन–ग्रंथ भण्डारों का अवलोकन करते समय उनके द्वारा अपभ्रंश भाषा में लिखी गई **भविस्सयत्त कहा** की प्रति प्राप्त हुई थी। उसे स्वदेश ले जाकर उन्होंने उसका गहन अध्ययन किया और सन् 1918 में अपनी पांडित्यपूर्ण भूमिका के साथ इस कृति को म्युनिख में प्रकाशित कराया। तत्पश्चात् डॉ. जैकोबी के इस संस्करण के आधार पर सन् 1923 में श्री चिम्मनलाल दलाल और गुणे ने इसके अंग्रेजी–संस्करण को गायकवाड़ ओरियन्टल सीरिज से प्रकाशित कराया। इस ग्रंथ के प्रकाशन के साथ अपभ्रंश भाषा के अध्ययन का मार्ग खुल गया। आगे चलकर इस कृति का प्रकाशन अपभ्रंश के प्रसिद्ध ग्रंथ **'अपभ्रंशत्रयी'** में भी हुआ।

ध्यातव्य है कि जैन धर्म की श्वेताम्बर आम्नाय में कार्तिक शुक्ल पंचमी को 'ज्ञान पंचमी' और 'सौभाग्य पंचमी' नाम से भी अभिहित किया जाता है। उल्लेखनीय है कि कार्तिक शुक्ल पंचमी के माहात्म्य को प्रकट करने के लिएं कालान्तर में **ज्ञान पंचमी कथा, श्रुत पंचमी कथा, सौभाग्य**

पंचमी कथा, वरदत्त गुणमंजरी कथा तथा **भविष्यदत्त कथा** आदि नाम से अनेक कथा–ग्रंथ लिखे गये हैं, जिनमें **'नाण पंचमी कहाओ'** नामक कथा–ग्रंथ सबसे प्राचीन है।[1] इसमें दस कथाएं हैं – जयसेण कहा, नंद कहा, भद्दा कहा, वीर कहा, कमला कहा, गुणाणुराग कहा, विमल कहा, धरण कहा, देवी कहा, तथा भविस्सयत्त कहा। प्रत्येक कथा ज्ञान पंचमी व्रत के माहात्म्य के दृष्टान्त के रूप में लिखी गई है। सब का अन्त एक–सा है, जिससे कथा की सरलता तो एक प्रकार से नष्ट हो जाती है, पर शेष कथा–भाग प्रायः अच्छा बन पड़ा है। प्रथम और अंतिम कथाएं लम्बी हैं – लगभग 5–5 सौ गाथाओं में; अन्य कथाएं 125–125 गाथाओं में समाप्त की गई हैं। गाथाओं की कुल संख्या 2804 है। कृति का रचना–काल निर्धारित नहीं किया जा सका। इसके रचियता महेश्वर सूरि[2] (जैसा कि 'ज्ञान पंचमी–कथा' से स्पष्ट है) थे, जो बड़े प्रतिभाशाली और भाषा प्रभुत्ववान कवि थे। कथाओं की वर्णन शैली सरल और भावयुक्त है। इनकी भाषा सुललित एवं सरल महाराष्ट्री है। जगह–जगह सदुक्तियां और ललित पदावलियां भरी पड़ी हैं। वर्णन कवित्वपूर्ण हैं। इसी रचना के 'भविस्सयत्त कहा' के कथा–बीज को लेकर अर्थात् इसके अंतिम आख्यान के आधार पर अपभ्रंश में धनपाल ने **'भविस्सयत्त कहा'** नाम से एक सुन्दर महत्वपूर्ण प्रबन्ध–काव्य लिखा है और उसका संस्कृत–रूपान्तर मेघविजयगणि ने **'भविष्यदत्त चरित्र'** नाम से प्रस्तुत किया है। **'नाण पंचमी कहाओ'** की सबसे पुरानी ताड़पत्रीय प्रति वि.सं. 1109 की पाटन के संघवी भण्डार से मिली है। इससे अनुमान है कि यह इससे पूर्व की रचना है। आगे चलकर तो इस कथा को लेकर अनेक रचनाओं का प्रणयन हुआ।

जैन विद्वानों ने तप, शील, ज्ञान एवं भावना तथा तीर्थों के माहात्म्य के समान अपने धर्म या संप्रदाय के मान्य पर्वो व पुण्य–तिथियों के माहात्म्य को प्रकट करने वाले अनेक ग्रंथ लिखे हैं। इस प्रवृत्ति का सूत्रपात 14वीं–15वीं शती से विशेष रूप से हुआ है, पर 16वीं–17वीं शती में एतद् विषयक विशाल साहित्य की सृष्टि हुई है। जैन रचनाकारों की प्रायः सभी रचनाओं का विषय धार्मिक और उपदेश–प्रधान होने के कारण लेखक रचना के अंत में नायक–नायिका को विषयों से विरक्त बनाकर निर्वेद ग्रहण करा देता है, क्योंकि निर्वेद के द्वारा जीवन की मादकता, इन्द्रिय–लिप्सा और उद्वेग का शमन होता है, न कि जीवन के शुभ पक्ष का दमन। यही इस साहित्य की प्रमुख विशेषता तथा लोक–जीवन के लिए उपयोगिता है।

रचना में कथा का घटना–प्रवाह इस प्रकार गठित किया जाता है कि वह चरम पर पहुंचकर शान्त रस में पर्यवसित हो जाता है। यही कारण है कि सभी जैन रचनाएं प्रायः निर्वेदान्त हैं।

जैन कृतियों में प्रायः नायक अपने यौवन काल में राज्य–प्राप्ति, शत्रु–विजय, सुन्दरियों का उपभोग आदि सब करते हैं और इस प्रकार रचना में श्रृंगार, वीर, करुण आदि के लिए कवि को पर्याप्त अवसर मिल जाता है, किन्तु अंत में किसी मुनि के उपदेश से विरक्ति अवश्य हो जाती है। जैसे धनपाल की प्रसिद्ध रचना 'भविस्सयत्त कहा' में भविस्सयत्त तक्षशिला और कुरु राज्य के युद्ध में विजयी होकर तमाम सुख–ऐश्वर्य का स्वामी और भोक्ता बनता है, किन्तु तभी विमल बुद्धि मुनि के उपदेश से विरक्ति हो जाती है और तत्काल श्रृंगार शांत रस में पर्यवसित हो जाता है।

15वीं शताब्दी में श्रीधर नामक दिगम्बर विद्वान ने संस्कृत में **'भविष्यदत्त चरित्र'**[3] की रचना की, जिसकी हस्तलिखित प्रति सं. 1486 की लिखी हुई मिली है। इससे यह रचना अवश्य इस समय से पूर्व की है। 17वीं शती के प्रारम्भ में सं. 1614 में उपाध्याय पद्मसुंदर ने भी एक 'भविष्यदत्त चरित्र' की रचना की थी।[4] इसी शताब्दी के उत्तरार्ध में तपागच्छीय कनककुशल ने ज्ञानश्रुत का माहात्म्य सूचित करने के लिए कोढ़ी वरदत्त व गूंगी गुणमंजरी की कथा रोचक ढंग से निबद्ध की है,[5] जिसे **'वरदत्त गुणमंजरी कथा'**, **'गुणमंजरी कथा'**, **'सौभाग्य पंचमी कथा'** और **'कार्तिक शुक्ल पंचमी माहात्म्य कथा'** नाम से भी अभिहित किया जाता है। कुछ विद्वान इन विभिन्न नामों से इन्हें भिन्न–भिन्न कृतियां मान ब्रैठे हैं, जो भ्रम मात्र है। कनककुशल इसके अलावा अनेक लघुकाय ग्रंथों के भी लेखक थे। इस कथा को लेकर माणिक्यचन्द्र के शिष्य दानचन्द्र ने भी सं. 1700 में **'ज्ञान पंचमी काव्य'** का निर्माण किया। 18वीं शती में प्रसिद्ध ग्रंथकार एवं कवि उपाध्याय मेघविजय (वि.सं. 1709–1760) ने 'श्रुत पंचमी माहात्म्य' पर 2042 पद्यों का **'भविष्यदत्त चरित्र'** लिखा,[6] जो 21 अधिकारों में विभक्त है। इसमें पद्यों के बीच–बीच में **पंचतंत्र, हितोपदेश** आदि ग्रंथों से सुभाषित भी उद्धृत किए गये हैं। इसे अनुप्रास, यमकादि शब्दालंकारों से विभूषित किया गया है। कुछ विद्वानों ने इसे धनपाल कृत 2000 गाथा–प्रमाण अपभ्रंश 'भविस्सयत्त कहा' (22 संधियां) का संस्कृत रूपान्तर माना है।[7]

19वीं शती में खरतरगच्छीय क्षमाकल्याण उपाध्याय (सं. 1829–65) ने ज्ञान पंचमी के माहात्म्य पर संस्कृत गद्य–पद्यमय **सौभाग्य पंचमी कथा**

रची। इसका पद्य भाग तो कनककुशल कृत एतद् विषयक रचना से लिया गया है और गद्य स्वयं लिखा है। क्षमाकल्याण द्वारा रचित अन्य रचनाएं भी मिलती हैं। एतद् विषयक अन्य रचनाओं में जिनहर्ष—कृत (अज्ञात समय), पार्श्वचन्द्र—कृत, सुन्दर गणि—कृत, मंजुसूरि—कृत, मुक्तिविमल—कृत[6] (वि.सं. 1969 में 102 संस्कृत पद्यों में) तथा कई अज्ञात कर्तृक कृतियां भी मिलती हैं। इस प्रकार इस कथा को लेकर काफी रचनाएं लिखी गई हैं।

'भविस्सयत्त कहा' के रचयिता धनपाल के पिता का नाम मयेश्वर या महेश्वर था। ये धक्कड़ वैश्य वंश में उत्पन्न हुए थे। इनकी माता का नाम धनश्री था। इन्हें भी अपनी प्रतिभा पर गर्व था और स्वयं को सरस्वती—पुत्र (सरसई बहुल्लद्ध महावरेण) कहते थे। जैकोबी ने इनका समय 10वीं शती माना है। प्रो. भायाणी ने **भविस्सयत्त कहा** की भाषा के आधार पर इसे स्वयंभू के पश्चात् और हेमचन्द्र से पूर्व की रचना बताया है। ये शोभन मुनि के भ्राता थे।

इस महाकाव्य की कथा लौकिक है। इसमें ख्यातवृत्त नायक—पद्धति को छोड़ कर लौकिक नायक की परम्परा का सूत्रपात किया गया है। इसकी रचना श्रुत पंचमी व्रत का माहात्म्य प्रतिपादित करने के लिए की गई है। इसलिए इसका अपरनाम **'श्रुत पंचमी कहा'** भी है। यह 22 संधियों की रचना है। इसमें गजपुर के धनपाल नामक व्यापारी के पुत्र भविष्यदत्त की कथा का वर्णन है। धनपाल ने सरूपा नामक दूसरी सुन्दरी से शादी कर ली, जिससे बंधुदत्त नामक पुत्र हुआ। धनपाल प्रथम स्त्री और उसके पुत्र की उपेक्षा करने लगा। भविष्यदत्त अपने सौतेले भाई से दो बार धोखा खाकर बहुत कष्ट पाता है, किन्तु अंत में उसे सफलता मिलती है। इस कथा में दो विवाह के दोष और अच्छे—बुरे चरित्रों वाले पात्रों का गुण—दोष कुशलतापूर्वक दिखाया गया है। इसमें जिन—भक्ति का आदर्श रूप देखा जा सकता है।

धनपाल (द्वितीय)

धनपाल (द्वितीय) पूर्व में ब्राह्मण थे, फिर जैनधर्मी हो गए थे। इनके पिता का नाम सर्वदेव था। इनके पितामह देवर्षि मध्य देश के 'सांकाश्य' (वर्तमान फर्रूखाबाद जिले का संकिसा नामक ग्राम) के रहने वाले थे और फिर उज्जयिनी में आ बसे थे। धनपाल संस्कृत—प्राकृत के प्रकाण्ड पंडित एवं सुकवि थे। ये प्रसिद्ध परमार धारा—नरेश भोज के सभा—पंडित थे। इनकी संस्कृत—गद्य रचना **'तिलक मंजरी'** पर्याप्त प्रसिद्ध रचना है। इनके संबंध में **'धनपाल प्रबन्ध'**, **'भोज प्रबन्ध'** आदि में कई

आख्यान दिए गये हैं। **'प्रभावक चरित'** से ऐसी सूचना मिलती है कि इन्होंने सांचौर के महावीर की स्तुति की थी। धनपाल की अन्य रचनाओं में **'पाइय लच्छी नाममाला'** (प्राकृत कोश), **'ऋषभ पंचासिका'** एवं **'वीर थुई'** मिलती हैं। **नाममाला** ग्रंथ लेखक ने अपनी विदुषी बहन सुन्दरी के लिए सं. 1029 में बनाया था और यह एकमात्र उपलब्ध प्राकृत कोश है। इसमें उसने प्रसंगवश मालव नरेश श्री हर्ष (सीयक) द्वारा वि.सं. 1029 में राठौड़ों की राजधानी मान्यखेट को लूटने का वर्णन भी किया है। इसमें 279 गाथाएं आर्या छंद में हैं और यह कोश एकार्थक शब्दों का बोध कराता है। इसमें 998 प्राकृत शब्दों के पर्याय दिए गये हैं।

प्रभावक चरित से ज्ञात होता है कि धनपाल ने 'सांचौर' के महावीर की स्तुति की थी। अतः उनके नाम से **'सच्चरिउ महावीर उछाह'** (सत्यपुरीय महावीर उत्साह) नामक एक रचना प्राप्त होती है, जो आदिकालीन हिन्दी जैन साहित्य की 11वीं शताब्दी में प्राप्त होने वाली एक अत्यंत महत्वपूर्ण रचना भी मानी जाती है। इसका रचनाकाल सं. 1081 के लगभग है। इस रचना को लिखते समय धनपाल काफी वृद्ध हो गए थे। संभवतः 80 वर्ष के आस–पास की आयु के थे। कवि धनपाल मालवपति मुंज और भोज की सभा के विद्वान एवं अग्रणी पंडित थे। कवि ने राजा भोज के कौतुहल का निवारण करने के लिए ही **'तिलक मंजरी'** जैसी प्रसिद्ध संस्कृत गद्य आख्यायिका की रचना की थी।

भोजराज ने इनको राजसभा में 'कूर्चाल सरस्वती' और 'सिद्ध सारस्वत कवीश्वर' की पदवियां देकर सम्मानित किया था। बाद में **'तिलक मंजरी'** को लेकर उनका भोजराज से वैमनस्य हो गया था। तब वे सांचौर जाकर रहने लगे।

धनपाल की **'उछाह'** (उत्साह) नामक उक्त रचना का सम्पादन मुनि जिनविजयजी ने पाटण के भण्डार में उपलब्ध सं. 1357 की प्रतिलिपि से किया था और इसका प्रकाशन काफी समय पहले "जैन साहित्य संशोधन" द्वारा सं.1984 / 1927ई. में हुआ था। रचना 11वीं शताब्दी की होने से भाषा की जानकारी के लिए महत्वपूर्ण है यद्यपि रचना की भाषा के विषय में विद्वानों में मतैक्य नहीं है। मुनि जिनविजयजी तथा श्री के. का. शास्त्री इसको अपभ्रंश की ही ठहराते हैं।[9] किन्तु श्री अगरचन्द नाहटा इसे शुद्ध अपभ्रंश न मानकर प्राचीन राजस्थानी से प्रभावित उत्तर अपभ्रंश की मानते हैं और उन्होंने इसे वीरगाथा काव्य के भाषा काव्यों के अन्तर्गत ही रखा है।[10] यही कारण है कि विद्वानों ने इस रचना को अपभ्रंश एवं

प्राचीन राजस्थानी की समझकर इस पर विशेष ध्यान नहीं दिया था, किन्तु रचना की भाषा से प्रकट है कि यह कृति अपभ्रंश और पुरानी हिन्दी के बीच की एक कड़ी है। अतः इस रचना का भाषा–विज्ञान की दृष्टि से महत्वपूर्ण स्थान है।

यह रचना एक उल्लास–प्रधान गीत है, जो स्तुतिपरक है। यह स्तुति 15 रोला छंदों में है। इस छोटी–सी रचना का महत्व ऐतिहासिक भी है। यद्यपि यह कृति 'उत्साह' संज्ञक काव्य–रूप से संबंधित है, किन्तु प्रस्तुत रचना की भांति परवर्ती साहित्य में 'उत्साह' संज्ञक रचनाकारों का अभाव ही है। श्री अगरचन्द नाहटा जी के अनुसार भी 'उत्साह' संज्ञक केवल यही एक रचना प्राप्त हुई है। वस्तुतः उत्तर अपभ्रंश में रचित सर्वप्रथम यही जैन रचना उपलब्ध होती है, जिसका कई दृष्टियों से महत्व है। यह स्पष्ट है कि 'उत्साह' संज्ञक रचना का वस्तु–शिल्प किसी काव्य–रूप विशेष के लिए रूढ़ नहीं है। यह तो एक स्तुतिमूलक गीति रचना है, जो कवि के आह्लाद विशेष एवं उत्साह विशेष को प्रस्तुत करती है।

'सत्यपुरीय महावीर उत्साह' एक अनुभूति–प्रधान गीति–रचना है, जिसकी विषय–वस्तु का सीधा संबंध इतिहास से है। प्रस्तुत स्तुति का स्थान 'सत्यपुर' है, जो मारवाड़ का सांचौर नामक स्थान है।[11] यह स्थान जैनों का एक अत्यंत प्रसिद्ध प्राचीन तीर्थ रहा है। रचना में भगवान महावीर की मूर्ति इसी स्थल पर वर्णित है जो उत्साह का विषय है। कहा जाता है कि मारवाड़ की सांचौर स्थित भगवान महावीर की मूर्ति को तोड़ने में महमूद गज़नवी (वैसे रचना में किसी का नाम नहीं है, किन्तु कवि के समय को देखते हुए ऐसा अनुमान किया गया है) असफल रहा, तो भक्तों में इससे बड़ा उल्लास–उत्साह हुआ और अपनी उल्लासमयी भावनाओं के उद्वेग की उत्साहपूर्ण अभिव्यक्ति के लिए वे उत्प्रेरित हुए। धनपाल की यह रचना उसी उल्लास की प्रतिक्रियारूप है, जिसमें मूर्ति के यश–वर्णन द्वारा भगवान महावीर के दैवी सामर्थ्य का प्रकटीकरण किया गया है।[12]

कवि धनपाल ने रचना का प्रारम्भ प्रार्थना से करते हुए इसमें भगवान महावीर के यश की विशालता का वर्णन किया है। यद्यपि इस कृति में कला–पक्ष (अलंकार आदि) का उस दृष्टि से अभाव ही है, जैसा किसी साहित्यिक कृति में माना जाता है, किन्तु फिर भी भाषा, काव्य–रूप तथा तत्कालीन समय में साहित्य की प्रामाणिक रचनाओं के रूप में इस 'उत्साह' जैसी छोटी कृति का भी पर्याप्त महत्व है। इस गीति–मुक्तक में एक धारावाहिकता है, तदपि प्रत्येक पद में स्वतंत्र भाव है और सभी पदों

में कवि का उल्लास मुखरित है। यह रचना वस्तुतः अनुरंजनात्मक और प्रभावोत्पादक है।

इस रचना की सबसे बड़ी विशेषता इसके जन–गीत के रूप में लोकप्रिय होने में है। इसीलिए जैन–समाज में आज भी 'उत्साह' जैसे आह्लादक गीत कण्ठस्थ करके प्रतिदिन पाठ किए जाते हैं। कवि ने सत्युपरीय जिनेन्द्र महावीर के शौर्य का वर्णन पर्याप्त कुशलता से किया है कि किस प्रकार मूर्ति भंजक तुरुष्क आक्रमणकर्ता ने कुल्हाड़ों से महावीर की मूर्ति पर आघात किया, किन्तु मूर्ति के चमत्कार से व्याकुल होकर उसे वहां से हटना पड़ा। कवि का वर्णन है कि मूर्ति पर कुल्हाड़े के घाव आज भी स्पष्ट दिखाई पड़ते हैं –

पुणवि कुहाड़ा हत्थि लेवि, जिणवर तणु ताड़िउ।
पच्छुत्थडवि कुहाड़ेहि सो सिरि अंबाडिउ।
अज्जवि दीसहि आंगिछाय, तसु धीरह,
चलण जुयलु सच्चरिउ नयरि पणमहं तसु वीरह।

धनपाल (तृतीय)

धनपाल (तृतीय) अणहिल्लपुर के पल्लीवाल जैन कुल में उत्पन्न हुए थे। ये अनन्तपाल के भाई थे। इन्होंने धनपाल द्वितीय कृत **तिलक मंजरी** पर आधारित **'तिलक मंजरी कथासार'**[13] नामक रचना वि.सं. 1261 में की। ये 13वीं शती के लेखक हैं।

अन्य धनपाल

इनके अतिरिक्त एक अन्य धनपाल, जो 15वीं शती के प्रतीत होते हैं, का उल्लेख भी मिलता है, जिन्होंने **'बाहुबलि चरित'** नामक 18 संधि का चरित काव्य लिखा, जिसमें प्रथम कामदेव बाहुबलि का चरित्र अंकित है। इसकी रचना चन्द्रवाड नगर के राजा सारंग के मंत्री वासाहर (वासद्धरु) की प्रेरणा से वैशाख सं. 1455 में की गई थी। इसमें कवि ने अपने से पूर्व के अनेक कवियों और उनकी कृतियों का आदरपूर्वक स्मरण किया है। इस कृति में बीच–बीच में संस्कृत के पद्य भी मिलते हैं। ये धनपाल गुजरात के पुरवाडवंशी श्री सुहड़प्रभ की धर्मपत्नी सुहड़ा देवी की कुक्षि से उत्पन्न हुए थे। ये संस्कृत के अच्छे जानकार थे।

---

1 **'नाण पंचमी कहाओ'** नामक सब से प्राचीन ग्रंथ का प्रकाशन 'सिंघी जैन ग्रंथमाला' के ग्रंथांक 25 के रूप में भारतीय विद्या भवन, बम्बई, से सं 2005 में हुआ।

{श्वेताम्बर परम्परा में महावीर सं. 980 या 993 (=453 या 466 ई.) में वल्लभी में देवर्द्धिगणि क्षमाश्रमण की अध्यक्षता में अन्ततः आगम वाचना की गई थी और कार्तिक शुक्ला 5 को आगम साहित्य निबद्ध किया गया। अतः इस तिथि को 'ज्ञान पंचमी' नाम दिया गया।

परन्तु दिगम्बर परम्परा में ज्येष्ठ शुक्ल 5 को महावीर सं. 602 (=75 ई.) में *षट्खण्डागम* का प्रणयन हुआ और उससे वह तिथि 'श्रुत पंचमी' के नाम से प्रसिद्ध हुई।

इससे इंगित होता है कि धनपाल (प्रथम) जैन धर्म की श्वेताम्बर आम्नाय के अनुयायी थे। – सम्पादक}

2 महेश्वर सूरि को ही भूल से महेन्द्रसूरि लिखकर उक्त कर्तृक भविष्यदत्त कथा की **'भविष्यदत्ताख्यान'** नाम से कुछ प्रतियां मिलती हैं।

3 **अनेकान्त,** जून 1941, पृ. 350.

4 ऐलक पन्नालाल सरस्वती भवन में सं. 1615 की हस्तलिखित प्रति,
दृष्टव्य **जैन साहित्य और इतिहास**, पृ. 396.

5 कनककुशल की यह कृति 152 श्लोकों में है और सं. 1655 में इसकी रचना की गई थी।

6 हिम्मत ग्रंथमाला, अंक 1, में पं. मफतलाल झबेरचंद्र गांधी द्वारा सम्पादित, गुजराती अनुवाद, अहमदाबाद से प्रकाशित।

7 **प्राकृत साहित्य का इतिहास**, पृ. 441 पर टिप्पण।

8 दया विमल ग्रंथमाला, अहमदाबाद।

9 **आपणा कवियो**, पृ. 55, पर शास्त्री लिखते हैं – 'यह कवि मालवपति मुखसिंधुराज और भोज की विद्वत्–सभा में अग्रणी था। इस कवि ने 15 गाथा का **सत्यपुरीय महावीरोत्साह मंडन** नामक अपभ्रंश काव्य रचा है।'

10 **नागरी प्रचारिणी पत्रिका**, वर्ष 46, अंक 3, में श्री नाहटा जी का लेख – 'वीरगाथा काल का जैन भाषा–साहित्य'।

11 यह स्थान जोधपुर मंडल के दक्षिण भाग में है। सत्यपुर के लिए **जग चिन्तामणि** ग्रंथ में 'जयउ वीर सच्चरिउ मण्डन' उल्लेख मिलता है और **विविध तीर्थ कल्प** में भी सत्यपुर को 'विशेष कल्प' बताने का उल्लेख मिलता है। अतः स्पष्ट है कि सत्यपुर जैनों का एक विशिष्ट तीर्थ था।

12 सरलता के लिए इसे वीर रस–प्रधान स्तवन कहा जा सकता है क्योंकि 'उत्साह' वीर रस का स्थायी भाव होता है, किंतु संख्या में केवल एक होने से ऐसा दृढ़तापूर्वक नहीं कहा जा सकता।

13 इसकी रचना अनुष्टुप छंद में हुई है और इसमें 1200 से कुछ अधिक पद्य हैं। इस का प्रकाशन लालभाई दलपतभाई भारतीय संस्कृति मंदिर, अहमदाबाद, से सन् 1940 में हुआ था।

14वीं शताब्दी की दो गद्य रचनाओं – **'धनपालकथा'**, और **'तत्त्व विचार प्रकरण'** को श्री अगरचंद नाहटा जी ने **'राजस्थान भारती'** में प्रकाशित कराया है। धनपाल की प्रसिद्ध कृति **'तिलक मंजरी'** किसी अग्निकांड में भस्म हो गई थी, जिसे उन्होंने पुनः लिखा था। **धनपालकथा** में इसी घटना का वर्णन है। **तिलक मंजरी** को आलोचक **कादम्बरी** की कोटि की रचना बताते हैं।

'श्रावक निधि रास' नामक एक रचना, जिसका रचना काल सं. 1371 है, के लेखक के संबंध में अधिक जानकारी नहीं मिलती, किन्तु डॉ. दशरथ ओझा ने इसे धनपाल की रचना बताया है **(हिन्दी साहित्य का वृहत इतिहास**, भाग 3, पृ. 299) परन्तु धनपाल के नाम पर इस रास का कहीं कोई उल्लेख नहीं मिलता, अतः डॉ. दशरथ की बात उचित नहीं प्रतीत होती।

(86–वर्षीय श्री वेद प्रकाश गर्ग हिन्दी साहित्य जगत के वरेण्य विद्वान हैं। यह लेख **अपभ्रंश भारती,** अंक 20 (2009–2013) में प्रकाशित उनके लेख "धनपाल नाम के रचनाकार" से अनुकूलित है। –सम्पादक)

14, खटीकान, मुजफ्फरनगर–251002

✧✧✧

करे अमल जो उसकी जय जयकार है

– (कीर्तिशेष) डॉ. ज्योति प्रसाद जैन

पर उपदेश सरल है प्यारे, करे अमल जो उसकी जय जयकार है!
हिंसा झूठ औ व्यभिचार, चोरी अनीति असदाचार,
पाप का बाप है लोभ विकार,
मानव वह जो करता इनका परिहार है।
करे अमल जो उसकी जय जयकार है!!1
कुव्यसनों में जो नहीं फंसता, पाप–पंक में कभी न धंसता,
विपत्ति में भी जो है हंसता,
सफलता उस का ही एक अधिकार है।
करे अमल जो उसकी जय जयकार है!!2
श्रद्धा–ज्ञान–कर्म की त्रयी का, न्याय नीति सुखद त्यागमयी का,
पर उपकारी आत्मजयी का, जग करता वन्दन बारम्बार है।
करे अमल जो उसकी जय–जयकार है!!3

✧✧✧

अयोध्या

- डॉ. ज्योति प्रसाद जैन

कोसलो नाम विदितः स्फीतो जनपदो महान्।
निविष्टः सरयूतीरे प्रभूतधनधान्यवान्।।
अयोध्या नाम तत्रास्ति नगरी लोकविश्रुता।
मनुना मानवेन्द्रेण पुरैव निर्मिता स्वयं।।

रामायण के बालकाण्ड में उपरोक्त श्लोक में महर्षि बाल्मीकि ने उल्लेख किया है कि सरयू नदी के दोनों तटों पर बसा हुआ कोसल नाम का विस्तृत महान् एवं प्रभूत धन–धान्य से पूर्ण जनपद (देश) था। उसकी अयोध्या नाम की लोक प्रसिद्ध महानगरी थी जिसका आदिराज मनु ने स्वयं निर्माण किया था।

उत्तर कोशल की अयोध्या नगरी समस्त आश्चर्यो का निधान यथानाम तथागुण रही है। भारतीय संघ के उत्तर प्रदेश राज्य के पूर्वी भाग (अवध प्रान्त) के फैजाबाद जिले में फैजाबाद नगर से 7 कि.मी. की दूरी पर सरयू (घाघरा) नदी के दक्षिणी तट पर स्थित अयोध्या की भारतवर्ष की प्राचीनतम महानगरियों एवं परम पावन धर्मतीर्थो में गणना है। अयोध्या की लगभग दूरी भारत की राजधानी दिल्ली से 650 कि.मी., उत्तर प्रदेश की राजधानी लखनऊ से 140 कि.मी., इलाहाबाद (प्रयाग) से 160 कि.मी., वाराणसी से 192 कि.मी. और गोरखपुर से 160 कि.मी.है। गोरखपुर से आने वालों को सरयू के उस पार मनकापुर रेल स्टेशन पर उतरना होता है। सरयू पर पक्का पुल है। उपरोक्त नगरों से मोटर बस द्वारा सड़क मार्ग से भी अयोध्या पहुंचा जा सकता है।

नाम

प्राचीन एवं मध्यकालीन साहित्य में इस नगरी के अनेक नाम प्राप्त होते हैं, यथा अयोध्या, साकेत, विनीता, प्रथमपुरी, इक्ष्वाकुभूमि, कोशला, कोशलपुरी, अउज्झा, अजुध्या, औध, अवधपुरी, अवध आदि।

इतिहास

आधुनिक इतिहासकार भारतवर्ष के प्राचीन इतिहास का पुनर्निर्माण मुख्यतया ब्राह्मण परम्परा की पौराणिक अनुश्रुतियों के आधार से करते हैं। उक्त अनुश्रुतियों के अनुसार वैवस्वत् मनु इस महादेश का प्रथम राजा था।

स्वयं मनु ही भारत की इस प्रथमपुरी का निर्माता था। उसका ज्येष्ठ पुत्र इक्ष्वाकु अयोध्या का प्रथम राजा हुआ। वही प्राचीन भारतीय क्षत्रियों के इक्ष्वाकु अपरनाम सूर्यवंश का संस्थापक था। उसके एक सौ पुत्र थे। उसके उपरान्त देश उन पुत्रों में बंट गया। अयोध्या में विकुक्षि अपरनाम शशाद का राज्य हुआ। वंश का छठा राजा पृथु था जिसके नाम पर यह धरा 'पृथ्वी' कहलाई। उसके प्रपौत्र श्रावस्त ने श्रावस्ती बसाई। कई पीढ़ियों पश्चात् इस वंश में मान्धाता नाम का प्रतापी सम्राट हुआ। वंश का 31 वां नरेश हरिश्चन्द्र था जो अपनी सत्यनिष्ठा के लिये लोक–प्रसिद्ध हुआ और 38वां नरेश सगर प्रसिद्ध चक्रवर्ती हुआ। उसके प्रपौत्र भगीरथ को हिमालय से गंगा नदी को मैदान में लाने का श्रेय दिया जाता है। भगीरथ का प्रपौत्र अम्बरीष भारी भगवद् भक्त था। एक अनुश्रुति के अनुसार आगे चलकर उसी की वंश परम्परा में अग्रवालों का पूर्वज महाराज अग्रसेन हुआ।

अम्बरीष का पौत्र ऋतुपर्ण विदर्भ नरेश नल का मित्र था। कई पीढ़ियों के उपरान्त अयोध्या का प्रतापी इक्ष्वाकु नरेश दिलीप द्वितीय खट्वांग हुआ, जिसका पुत्र दिग्विजयी रघु था। रघु का पौत्र और अज का पुत्र अयोध्यापति दशरथ था जिसके सुपुत्र राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न थे। वाल्मीक की **रामायण** में इन्हीं महाराज रामचन्द्र के काल की घटनायें वर्णित हैं। राम–राज्य भारत के लिये एक स्पृहणीय आदर्श बन गया।

राम के उपरान्त उनका ज्येष्ठ पुत्र कुश अयोध्या का राजा हुआ और कनिठ पुत्र लव श्रावस्ती का राजा हुआ। कुश ने भी अयोध्या का परित्याग करके कुशस्थली को अपनी राजधानी बनाया। अयोध्या उजाड़ हो गई। कुश ने उसे पुनः बसाने का प्रयत्न भी किया। उसकी 17वीं पीढ़ी में अयोध्या नरेश हिरण्याभ कौशल्य जैमिनी मुनि का शिष्य था और उसने याज्ञवल्क्य को योग विद्या सिखाई थी। राम की 30वीं पीढ़ी में वंश का 93वां राजा वृहद्बल महाभारत युद्ध में कौरवों की ओर से लड़ता हुआ मारा गया। उसके उपरान्त दिवाकर नाम के एक अयोध्या नरेश का नाम मिलता है। इस नगर का अन्तिम (125वां) इक्ष्वाकुवंशी नरेश सुमित्र था, जिसका अन्त करके 4थी शती ई. पू. में मगध के सम्राट् नन्दिवर्धन ने अयोध्या राज्य को मगध साम्राज्य में मिला लिया। उसने यहां एक स्तूप भी बनवाया था जिसकी पहचान वर्तमान मणिपर्वत से की जाती है।

तदुपरान्त कोशलदेश और उसकी अयोध्या नगरी क्रमशः नन्दों और फिर मौर्यो के मगध साम्राज्य का अंग रहे। मौर्यो के उपरान्त मगध

में शुंगों का शासन हुआ और उनकी एक शाखा का अयोध्या पर शासन रहा लगता है, जिसका स्थान कुछ ही काल पश्चात् एक स्थानीय राजवंश ने ले लिया प्रतीत होता है। ईसा की पहली से तीसरी शती पर्यन्त अयोध्या कुषाण सम्राटों के राज्य का अंग रही। तदनन्तर पुनः एक स्थानीय वंश का राज्य रहा। चौथी से छठी शती ई. पर्यन्त वह गुप्त साम्राज्य का अंग रही और प्रारम्भ में तो गुप्त साम्राज्य की प्रधान नगरी भी रही। तदुपरान्त मौखरि एवं वर्धन वंशों का अधिकार रहा और 8वीं शती के प्रारम्भ में कन्नौज के सम्राट् यशोवर्मन का। इसके पश्चात् 10वीं शती के अन्त पर्यन्त अयोध्या गुर्जर–प्रतिहार सम्राटों के राज्य का अंग रही। प्रायः इसी काल में यहां श्रीवास्तव राजाओं का राज्य रहा और 11वीं शती के अन्त से 12वीं शती के अन्त तक गाहडवालों का शासन रहा। गाहडवालों का पतन होने पर भर सरदारों ने अयोध्या प्रदेश के विभिन्न भागों पर अधिकार रखा। राजपूतों और मुसलमानों ने भरों का उच्छेद किया।

13वीं शती के प्रारम्भ में दिल्ली में तुर्कों की सत्ता स्थापित होते ही उन्होंने अयोध्या के राजनीतिक महत्व को समझा। वे अयोध्या का उच्चारण औध या अवध करते थे और अवध (अयोध्या) को ही उन्होंने अपने सूबा अवध का शासन–केन्द्र बनाया। गुलाम, खिल्जी, तुग़लक, सैयद, लोदी और सूर पठानों के शासनकाल में एक के बाद एक महत्वपूर्ण मुसलमान सरदार अवध के सूबेदार होते रहे। बीच में 15वीं शती में जौनपुर के शर्की सुलतानों का भी अयोध्या पर कुछ काल तक आधिपत्य रहा। 16वीं शती में बाबर द्वारा मुगल शासन की स्थापना हुई। इस मुस्लिम शासन काल में अयोध्या का प्राचीन सांस्कृतिक एवं धार्मिक महत्व प्रारंभिक तीन शताब्दियों में तो समाप्त प्रायः हो गया था, किन्तु मुगल काल के प्रारम्भ से ही राम–भक्ति सम्प्रदाय का यह नगर गढ़ बनता गया और उत्तर मुगल काल में अर्थात् अवध के नवाबों के शासन काल में तो वह पूर्णतया एक धर्मतीर्थ ही बनकर रह गया।

सन् 1722 ई. में जब मुहम्मद अमीन सादतखां बुरहानुल्मुल्क की नियुक्ति अवध के सूबेदार के रूप में हुई तो उसने अयोध्या में ही आकर अपना डेरा डाला था। अवध के नवाबी राजवंश का वह संस्थापक था। अवध की यह नवाबी 11वें नवाब वाजिद अलीशाह के साथ 1856 ई. में समाप्त हुई। प्रथम नवाब ने ही अयोध्या से 4–5 मील पश्चिम की ओर अपनी शिकारगाह व एक बंगला बनवाया था। छावनी भी वहीं स्थानांतरित हो गई। दूसरे नवाब सफदरजंग के समय में फैजाबाद नाम से वहां एक

कस्बा भी बसने लगा, और तीसरे नवाब शुजाउद्दौला ने तो उसे एक रमणीक नगर बनाकर अपनी राजधानी ही बना लिया। किन्तु उसके उत्तराधिकारी आसफुद्दौला ने फैजाबाद का भी परित्याग कर के लखनऊ को राजधानी बनाया। इस प्रकार अयोध्या का राजनीतिक महत्व तो फैजाबाद राजधानी बनने से ही समाप्त हो गया था, किन्तु अवध के ये नवाब या बादशाह अयोध्या के धर्मस्थानों के प्रति सहिष्णु ही रहे, और धर्मतीर्थ के रूप में उसका आदर करते रहे। तथापि, हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच यहां इस युग में साम्प्रदायिक संघर्ष भी हुए। सन् 1857 के स्वातन्त्र्य समर की विफलता के फलस्वरूप यहां अंग्रेजी शासन स्थापित हुआ और अयोध्या के नवाबी उपनगर फैजाबाद को एक जिले का केन्द्र बनाया गया। सन् 1947 ई. में देश को स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद भी यही स्थिति चल रही है – फैजाबाद जिले का प्रशासकीय केन्द्र है, और अयोध्या राम–भक्त हिन्दुओं तथा जैनों का पवित्र तीर्थस्थान है। अनगिनत मंदिर और धर्मशालाओं के अतिरिक्त एक राजकीय पर्यटक केन्द्र एवं निवास भी यहां हैं। नगर अनेक धार्मिक एवं सांस्कृतिक गतिविधियों का केन्द्र है।

पुरातत्व

अयोध्या एक अत्यंत प्राचीन स्थान तो है ही किन्तु अपने धार्मिक महत्व के कारण वह कभी सर्वथा उजाड़ और परित्यक्त नहीं हुई – बस्ती बनी रही। शायद यही कारण है कि यहां से प्राचीन पुरावशेष अत्यल्प मात्रा में उपलब्ध हुए हैं। आसपास छोटे–बड़े कई टीले है, उनकी, विशेषकर मणिपर्वत की, खुदाई में प्राचीन पुरातत्व के मिलने की संभावना है। राम जन्म–स्थान के मंदिर के कसौटी के स्तम्भ यह सूचित करते हैं कि उस स्थान पर संभव है लगभग 2000 वर्ष पूर्व कोई विशाल मंदिर रहा होगा।[1] अन्य सब मंदिर व धर्मायतन मध्यकालीन व आधुनिक युगीन हैं। कहा जाता है कि अवध के बादशाह नासिरुद्दीन हैदर के समय में मणिपर्वत से नन्द युग का एक शिलालेख प्राप्त हुआ था, किन्तु अब उसका कहीं कोई पता नहीं है।[2] मणिपर्वत के दक्षिण ओर स्थित एक खेत से अयोध्या के शुंगकालीन प्रथम शती ई.पू. के राजा धनदेव का संस्कृत शिलालेख भी मिला है।[3]

---

1 दिसम्बर 1992 में बाबरी मस्जिद के नाम से प्रसिद्धि प्राप्त भवन के नष्ट हो जाने से यह साक्ष्य समाप्त हो चुका है।

2 *P.Carnegi :* **A Historical Sketch of Tahsil Faizabad, 1870,** *p.24 & f.n.*

3 **Faizabad Gazetteer**, *p.32*

1865 में अयोध्या के निकट प्राचीन सिक्कों का एक दफीना मिला था, जिसमें तीन प्रकार के प्राचीन सिक्के थे, जो स्थानीय राजाओं के प्रतीत होते हैं। 2री–1ली शती ई. पू. के सिक्कों में एक ओर वृषभ या हस्ती, दूसरी ओर चैत्यवृक्ष, स्वस्तिक, नन्द्यावर्त आदि जैन चिन्ह हैं। तीसरे वर्ग के सिक्के 2री–4थी शती ई. के स्थानीय मित्रवंशी राजाओं के हैं। इन में भी वृषभ, नन्दिपद आदि चिन्ह हैं। फैजाबाद तहसील के भिटौरा गांव से मौखरि नरेशों के सिक्के मिले हैं। स्वयं अयोध्या में भी 7वीं शती ई. के हर्षवर्धन के सिक्के मिले हैं। गाहडवाल काल का भी कुछ पुरातत्व है। भरों के डीह भी हैं।

तदनन्तर मुस्लिम शासनकाल प्रारम्भ होता है जब अधिकांश प्राचीन देवालय, भवन आदि शनैः शनैः ध्वस्त होते गये, और नये बनते गये। मध्यकाल के, प्रायः 10वीं शती से लेकर 19वीं शती ई. के, कई जैन प्रतिमालेख, शिलालेख आदि भी उपलब्ध हैं। पुरातात्त्विक दृष्टि से अयोध्या एवं उसके आस–पास का क्षेत्र प्रायः उपेक्षित रहा है। उसके सम्यक् उत्खनन, शोध–खोज एवं अनुसन्धान के लिए पर्याप्त गुंजाइश प्रतीत होती है।

भगवान आदिनाथ जन्म–स्थान टोंक

स्वर्गद्वारी मोहल्ले में शाहजूरन के टीले पर स्थित मस्जिद के पृष्ठभाग में काफी ऊंचाई पर यह टोंक एक बन्द कक्ष में स्थित है जिसके बाहर आंगन एवं एक बरामदा बना है। यह इमारत मूलतः भी अपेक्षाकृत प्राचीन लगती है, यद्यपि बीच–बीच में जीर्णोद्धार होता रहा है। ऐसी मान्यता है कि पूर्वकाल में इसी स्थान पर आदिनाथ भगवान ऋषभदेव का जन्म स्थान का सूचक भव्य एवं विशाल जिन मंदिर था, जिसका अपरनाम संभवतया **स्वर्गद्वार जिनालय** था। बारहवीं शताब्दी ई. के अन्तिम दशक में भारत पर आक्रमण करने वाले मुइजुद्दीन बिनसाम मोहम्मद ग़ौरी के भाई मखदूम शाहजूरन ग़ौरी ने अपने अयोध्या पर आक्रमण के समय इस प्राचीन आदिनाथ जिनालय को ध्वस्त कर दिया था और उसके स्थान में मस्जिद बना दी थी। कालान्तर में जैनों के आग्रह पर तथा एक चमत्कार के फलस्वरूप वहां जैनों का अपना चरण–चिन्ह युक्त मंदिर बनाने की अनुमति मुसलमान शासकों ने दे दी थी। किंवदन्ती है कि जैनों ने जब आग्रह किया कि यह हमारा प्राचीन पवित्र स्थल है, भगवान आदिदेव का जन्म स्थान है, अतएव यहां मंदिर अवश्य रहना चाहिए। इस पर उनसे इसके समर्थन में प्रमाण मांगा गया तो उन्होंने कहा कि स्थान की खुदायी

करके देख लिया जाय, एक स्वस्तिक, नारियल तथा जलता हुआ घृत दीप मिलेगा। अस्तु खुदाई हुई और वे सब वस्तुएं यथावत् मिलीं। इस पर जैनों को यहां मंदिर बनाने की इजाजत मिल गई। कोई कहता है कि यह घटना शाहजूरन के समय की ही है, कोई इसे मुगल बादशाह बाबर या अकबर के समय की बताते हैं और कोई अवध के प्रथम नवाब सादत खां और उसके खजांची ला. केसरी सिंह के समय की बताते हैं। कुछ हो, इस टोंक का चढ़ावा भी पुराने समय से ही बकसरिया टोले में रहने वाले शाहजूरन ग़ौरी के वंशज लेते रहे थे। ऐसा लगता है जैसा कि शिलालेख से भी स्पष्ट है कि यह टोंक ला. केसरी सिंह के समय के पूर्व से ही विद्यमान थी और उन्होंने 1724 ई. में उसका जीर्णोद्धार एवं पुनः प्रतिष्ठा कराई थी। तदनन्तर 1899 ई. में लखनऊ के पंचों ने तथा 1946 ई. में ला. जम्बू प्रसाद गोटे वाले लखनऊ निवासी ने अपने पिता ला. धर्मचन्द की स्मृति में पुनः जीर्णोद्धार कराया और बाहरी दालान को ठीक कराया था।

अयोध्या के विषय में उपरोक्त विवरण कीर्तिशेष डॉ. ज्योति प्रसाद जैन की 1979 में प्रकाशित पुस्तक **आदितीर्थ अयोध्या** से संकलित किया गया है।

राम जन्म–भूमि पर भगवान राम का मंदिर बनाये जाने और उक्त स्थल पर गोल गुम्बद वाली इमारत के ध्वस्तीकरण के संदर्भ में अयोध्या 1990 से राष्ट्रीय स्तर पर विशेष चर्चा का विषय बन गई है। यहां यह उल्लेख किया जाना अपेक्षित है कि ''बाबरी मस्जिद'' के नाम से जो इमारत चर्चा क़ा विषय बनी हुई है वह कभी मस्जिद थी ही नहीं क्योंकि इसमें मिंबर नहीं था जहां से इमाम खुत्बा पढ़ते हैं। उसके निर्माता मीर बाक़ी ने स्वयं भी इसे 'फरिश्तों के उतरने की जगह' कहा है। मीर बाक़ी के शिलालेख का उल्लेख आर्केलॉजिकल सर्वे की रिपोर्ट में है परन्तु दिसम्बर 1992 में इस इमारत के ध्वस्त होने पर अब उसका वजूद शायद नहीं है।

– डॉ. शशि कान्त

✦✦✦

भगवान ऋषभ और अयोध्या

- श्री जी.डी.तपासे

हमारे देश की सांस्कृतिक परम्परा अत्यंत प्राचीन है। इस परम्परा का आदि काल की परिधि में निश्चित करना संभव नहीं है। जो दो प्रमुख विचारधाराएं हमारी संस्कृति को प्रभावित करती रही हैं उन्हें वैदिक और श्रमण परम्पराओं के नाम से जाना जाता है। वैदिक परम्परा प्रवृत्तिमूलक और श्रमण परम्परा निवृत्तिप्रधान मुख्यतया हैं। प्रवृत्ति और निवृत्ति, अथवा भोग और त्याग, मानव की सहज प्रवृत्तियां हैं। अतः इन प्रवृत्तियों के आधार से जो चिन्तन परम्परायें विकसित हुईं हैं वे मानवीय संस्कृति के प्रवाह में प्रायः एक साथ ही प्रस्फुटित हुईं, ऐसा मानना समीचीन प्रतीत होता है।

श्रमण परम्परा के प्रतिनिधि के रूप में वर्तमान में जैन धर्म प्रमुख रूप से विद्यमान है। जैन धर्म में मान्य तिरेसठ (63) श्लाघ्य पुरुषों में प्रमुख स्थान चौबीस तीर्थंकरों का है जिन्होंने वर्तमान कालचक्र में सभ्यता के प्रारम्भ से समय–समय पर जीवधारियों को आत्मकल्याण का मार्ग दिखाया। इनमें सर्वप्रथम ऋषभनाथ थे और अन्तिम चौबीसवें तीर्थंकर महावीर स्वामी थे।

जैन परम्परा के अनुसार **आदि तीर्थंकर ऋषभनाथ** ने सभ्यता का प्रवर्तन किया था। उन्होंने ही सर्वप्रथम मनुष्यों को शस्त्र विद्या, लेखन विद्या, कृषि, शिल्प और वाणिज्य की शिक्षा दी थी तथा समाज व्यवस्था एवं राज्य व्यवस्था की स्थापना की थी। उन्हीं के ज्येष्ठ पुत्र भरत के नाम पर इस देश का नाम भारतवर्ष पड़ा, ऐसी भी जैन परम्परा में मान्यता है। भारत की आदि लिपि ब्राह्मी का नामकरण भी ऋषभ की पुत्री ब्राह्मी के नाम पर हुआ माना जाता है।

ऋषभ नाम से महापुरुष का स्मरण जैनेतर आर्ष साहित्य में भी बहुधा मिला है जो यह सूचित करता है कि भारतीय संस्कृति के प्रतिष्ठापक चिन्तक मनीषियों में ऋषभ का एक महत्वपूर्ण सर्वमान्य स्थान था। ऋषभ से सम्बन्धित जैन पौराणिक अनुश्रुति और वैदिक पौराणिक अनुश्रुति ऐतिहासिक दृष्टि से उनका काल निर्णय करने में हमें सहायता नही देती। उनसे इतना ही निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि इस महापुरुष का आविर्भाव सुदूर अतीत में हुआ था और वे भारतीय सांस्कृतिक परम्परा के प्रतिष्ठापकों में से थे।

भगवान ऋषभ का जन्म **अयोध्या** में हुआ था। उनके उपरान्त चार अन्य तीर्थंकरों का जन्म भी इसी नगर में हुआ था। हिन्दू मतानुसार विष्णु के अवतार भगवान राम, जो जैन परम्परा के भी एक श्लाध्य पुरुष हैं, की जन्म–भूमि एवं लीला–भूमि भी यही नगर रहा है। इस प्रकार इस अयोध्या नगर का भारतीय सांस्कृतिक परम्परा में एक विशिष्ट स्थान है। जैनों की पौराणिक अनुश्रुति में यह 'आदि नगर' के रूप में मान्य है। वैष्णव परम्परा में भी इसे देव–निर्मित बताया गया है। बौद्ध परम्परा में इसे स्वयं आगत बताया गया है, और मध्ययुग में मुसलमानों ने भी इसे मक्का का नाम दिया है। विभिन्न परम्पराओं में इस नगर का उल्लेख और उन सभी का इस नगर को अपनी परम्परा से सम्बद्ध करने का प्रयास यह सूचित करता है कि भारत के धार्मिक जीवन से इस नगर का सम्बन्ध अत्यन्त घनिष्ठ रहा है।

यह अत्यन्त प्रसन्नता का विषय है कि इस प्राचीन नगर की धार्मिक परम्परा के अनुरूप इस समय यहां एक विशेष धार्मिक अनुष्ठान का आयोजन किया जा रहा है। यह आयोजन भगवान ऋषभ की परम्परा के अनुयायी जैन धर्मावलम्बी कर रहे हैं। मैं इस धार्मिक अनुष्ठान के लिये जैन समाज का अभिनन्दन करता हूं और जिनकी पावन स्मृति में यह अनुष्ठान किया जा रहा है उन भगवान ऋषभ के प्रति अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करता हूं।

भगवान ऋषभ की चिन्तन परम्परा का भारतीय संस्कृति में विशिष्ट स्थान है। जीवन के शाश्वत मूल्यों के प्रति मनुष्य की अन्तः प्रवृत्ति को जागृत करने का जो अभियान उन्होंने मानव सभ्यता के आदि काल में चलाया था वह आज भी उतना ही उपादेय है जितना कि तब था जब कि उन्होंने उसका प्रवर्तन किया था। उनकी चिन्तन परम्परा का मूल आधार अहिंसा और सहिष्णुता थे। अहिंसा हमें दूसरों के दुखों के प्रति संवेदना की अनुभूति कराती है और हमें अपने व्यवहार को ऐसा बनाने के लिये प्रेरित करती है कि उससे दूसरों को क्लेश न हो। सहिष्णुता हमें दूसरों के विचारों को समझने और उनसे समझौता करने की प्रेरणा देती है। अहिंसा और सहिष्णुता केवल धार्मिक सिद्धांत की वस्तु नहीं हैं वरन् वे व्यावहारिक पक्ष के मूलाधार हैं और हमें एक करुणाशील परोपकारी एवं सुसंस्कृत नागरिक बनाने के साधन हैं।

अहिंसा मनुष्य को भयरहित बनाने का एक अप्रतिम उपाय है और इसका वर्तमान काल में राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने राजनीतिक क्षेत्र में भी

सफल प्रयोग किया था। उनके सत्याग्रह आन्दोलन का आग्रह विशेषतः इसी बात पर था कि भारतीय जनमानस से सत्ता का भय निकल जाये और इसी का यह परिणाम था कि अंग्रेज भारतीयों को सत्ता हस्तान्तरित करने के लिये बाध्य हुए।

पिछले दिनों आपात स्थिति के दौरान हम लोग यह अनुभव कर चुके हैं कि सत्ता का दुरुपयोग किया जा सकता है। ऐसी स्थिति की पुनरावृत्ति न हो इसके लिये यह आवश्यक है कि जनमानस भयरहित हो, परन्तु साथ ही सहिष्णु और संतुलित हो। अहिंसा और सहिष्णुता के सिद्धान्तों को अपने आचरण में उतारने से ही ऐसा संभव है।

इस पावन अवसर पर मैं जैन समाज से तथा भारतीय समाज के सभी प्रबुद्ध वर्गो से यह अपेक्षा करना चाहूंगा कि भगवान ऋषभ की परम्परा को शाश्वत बनाये रखने के लिये हम सभी उनके द्वारा प्रणीत अहिंसा और सहिष्णुता के सिद्धान्तों को अपने आचरण और व्यवहार का मूल आधार बनायेंगे और जन–कल्याण के कार्यो में अधिकाधिक योग देंगे। इस अनुष्ठान के संयोजकों के प्रति मेरी हार्दिक शुभ कामनाएं हैं और उन्होंने इस अवसर पर मुझे जो सम्मान दिया है उसके लिये मैं उनका आभारी हूं। पुनः मैं अपनी श्रद्धांजलि भगवान ऋषभ और इस पावन नगरी अयोध्या को पवित्र करने वाले अन्य तीर्थंकरों एवं महापुरुषों के प्रति अर्पित करता हूं।

(दिसम्बर 1977 में अयोध्या में रायगंज में श्री आदिनाथ जिनालय में बिम्ब प्रतिष्ठा महोत्सव में मुख्य अतिथि के रूप में उत्तर प्रदेश के तत्कालीन राज्यपाल श्री जी.डी.तपासे ने अपने अभिभाषण में उपरोक्त उद्‌गार व्यक्त किये थे। उन्होंने जो कहा था, वह आज भी प्रासंगिक और मननीय है। — सम्पादक)

जैन धर्म के मूल तत्त्व

- (स्मृतिशेष) श्री अजित प्रसाद जैन

जिसने राग द्वेष कामादिक जीते, सब जग जान लिया।
सब जीवों को मोक्ष मार्ग का निस्पृह हो उपदेश दिया।।
बुद्ध वीर जिन हरि हर ब्रह्मा या उसको स्वाधीन कहो।
भक्ति भाव से प्रेरित हो यह चित्त उसी में लीन रहे।।

जिन महापुरुषों ने अपनी कठोर साधना से काम, क्रोध, मान, माया, लोभ को जड़ मूल से नष्ट करके हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, भूख, प्यास आदि पर जय प्राप्त करके पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर लिया, जो स्वयं अभय हो गए और जिन्होंने प्राणी मात्र को अभय दान दिया, उन्हें प्राचीन आचार्यों ने **'जिन'** या **'जिनेन्द्र'** की संज्ञा से स्मरण किया है। ऐसे वीतराग महात्माओं ने केवल लोक कल्याण की भावना से प्रेरित हो कर धर्म के जिस स्वरूप का उपदेश दिया उसे ही **जैन धर्म** कहते हैं।

जैन धर्म किसी अलौकिक या अति–प्राकृतिक *(Supernatural)* सत्ता या ईश्वर को आदर्श न मानकर उन महामानवों या तीर्थंकरों को ही आदर्श मानता है जिन्होंने अपने पुरुषार्थ से इस नश्वर जीवन में ही ईश्वर तत्त्व की उपलब्धि कर ली, आत्मा से परमात्मा हो गए, तथा जिन्होंने अपने जीवन को लोक कल्याण के लिए उत्सर्ग कर दिया। अतः जैन धर्म में किसी देवी–देवता की पूजा–उपासना का कोई आग्रह नहीं है, सारा बल केवल स्वयं के पुरुषार्थ अथवा धर्माचरण पर है।

धर्म की व्याख्या करते हुए जैनाचार्यों ने बताया है कि प्रत्येक प्राणी सुख की इच्छा करता है तथा दुःख से डरता है। किसी भी प्राणी को सुख पहुंचाना उसकी आत्मा के अनुकूल है, आत्मा की अनुकूलता ही उसका स्वभाव है। प्रत्येक वस्तु का स्वभाव ही उसका धर्म है। अग्नि का स्वभाव उष्णता है, यह अग्नि का धर्म है। जल का स्वभाव शीतलता है, यह जल का धर्म है। इसी प्रकार आत्मा का स्वभाव है समता – वीतरागता, यही आत्मा का धर्म है। क्रोध करना, लोभ करना आत्मा का स्वभाव नहीं है, ये सब विभाव है। विभाव से लौट कर वापस स्वभाव की ओर आना धर्म है।

कितना ही गर्म जल क्यों न हो, कुछ देर बाद वह अपने आप शीतल हो जाता है, अर्थात् विभाव से स्वभाव में आ जाता है। मनुष्य हर समय क्रोध और लोभ के चक्र में नहीं चल सकता। क्रोध में उसे अशान्ति महसूस होती है, क्षमा में शान्ति। लोभ में उसे बेचैनी प्रतीत होती है, संतोष में तृप्ति। अतः यही मानना होगा कि क्षमा, संतोष आदि समता मूलक वृत्तियां धर्म हैं, तथा धर्माचरण वही है जिसके द्वारा समता, क्षमा, सन्तोष आदि आत्मिक गुणों का विकास हो और निराकुल स्थायी सुख की प्राप्ति हो।

जैसे शीतलता जल का आन्तरिक गुण होते हुए भी बाहर अनुभव किया जाता है, उसी प्रकार धर्म का अनुभव जीवन–व्यवहार में किया जाता है। जीवन व्यवहार में धर्म के इस प्रकट रूप को **आचार** कहते हैं। जैन धर्म में धर्म के व्यवहार रूप आचार को सर्वोपरि प्रधानता दी गई है। इसका कारण यह है कि आचार जीवन को पवित्र बनाता है, गौरवान्वित करता है तथा सार्थक बनाता है। यदि किसी के पास सत्ता हो, सम्पत्ति हो, शरीर स्वरूप व सुन्दर हो तथा अन्यान्य विशेषताएं भी हों किन्तु यदि वह आचारहीन है तो न तो उसे लोक में स्थायी प्रतिष्ठा ही मिलती है और न ही आन्तरिक शान्ति प्राप्त होती है।

संक्षेप में **आचार का अर्थ** है मर्यादित जीवन। मन, वचन व शरीर की वृत्तियों को संयम द्वारा मर्यादित करने को ही आचार कहते हैं। जैन धर्म में आचार अथवा चारित्र धर्म के मूल तत्त्व गृहस्थों तथा संसार–त्यागी मुनियों के लिए एक ही हैं, केवल उनकी डिग्री में अन्तर है। जिस व्रत का गृह–त्यागी मुनि पूर्ण रूप से पालन करता है क्योंकि उसका एक मात्र लक्ष्य ही आत्म साधना है, गृहस्थ साधक अथवा श्रावक उसी व्रत को अपनी शक्ति एवं परिस्थितियों के अनुसार अथवा स्थूल रूप में धारण करके संयम का क्रमिक अभ्यास करते हुए अपनी आत्म शक्ति का विकास करता है। अहिंसा, सत्य, अचौर्य, अपरिग्रह तथा ब्रह्मचर्य पांच व्रत हैं जिन्हें साधु महाव्रत के रूप में तथा श्रावक अणुव्रत के रूप में धारण करता है।

राग–द्वेष और मोह–क्रोधादि कषायों अथवा प्रमाद के वशीभूत होकर अपने या दूसरे के प्राणों का हनन करना या उन्हें क्लेषित करना हिंसा है। हिंसा का त्याग ही **अहिंसा व्रत** का पालन करना है।

अहिंसा प्राणी मात्र के प्रति दया, करुणा और मैत्री का भाव रखना तथा सरल सच्चा और श्रेष्ठ व्यवहार करना सिखाती है। पीड़ितों का दुःख दूर करना, अपनी शक्ति और क्षमता के अनुसार दुखी, पीड़ित प्राणियों की आवश्यकताओं की पूर्ति करना, भूखे को भोजन, रोगी को औषधि दान,

भयभीत को अभय प्रदान करना, शरणागत तथा आश्रितों की रक्षा करना – अहिंसा धर्म का पालन करना है। गृहस्थ यदि अपना कर्तव्य पालन करने के लिए या देश की रक्षा के लिए अनासक्त भाव से हिंसा करता है तो भी वह अहिंसा धर्म का पालन करता है, यदि उसका आचरण अन्यथा उपरोक्त प्रकार हो। अहिंसा को जैन धर्म में सर्वोपरि प्रधानता दी गई है क्योंकि अहिंसा–मय सदाचरण के बिना धर्म की साधना संभव नहीं है।

भय, हास्य, क्रोध, लोभ आदि किसी भी कारण से तथा किसी भी परिस्थिति में असत्य न बोलना, अहितकर वचन न कहना, **सत्य व्रत** का पालन करना है। सत्य बोलना दूसरों के लिए लाभदायक होने की अपेक्षा स्वयं के लिए महान हितकारी है। वास्तव में सत्य ही भगवान है।

अपने लिए तथा अन्य के लिए किसी दूसरे की वस्तु को बिना उसकी अनुमति के अपने उपयोग में लाना चोरी है और इस प्रवृत्ति का त्याग करना **अचौर्य धर्म** है। पेट भरने और शरीर ढकने के लिए जरूरत से अधिक धन अथवा सामग्री का संग्रह रखना भी चोरी है, अपनी बुद्धिमानी, शक्ति आदि से दूसरों की वस्तुओं पर अधिकार जमाना, शोषण करना, अधिक मूल्य की वस्तु में कम मूल्य की वस्तु की मिलावट करना, विज्ञापन आदि देकर मानसिक व शारीरिक स्वास्थ्य को खराब करने वाली वस्तुओं आदि को बेचना या बेचने का उपाय करना भी चोरी है। अपने कर्तव्य पालन में शिथिलता करना तथा ड्यूटी के समय निष्ठापूर्वक अपना कार्य न करना भी चोरी है। चोरी का माल खरीदना तथा राज्य के नियम विरुद्ध कार्य करना भी चोरी है।

धन सम्पत्ति आदि न रखना, अपने जीवनोपयोगी वस्तुओं पर भी ममत्व न करना, शरीर पर भी आसक्ति न रखना **अपरिग्रह महाव्रत** है। यह व्रत पालन करने के मुख्य दो उद्‌देश्य हैं – एक व्यक्तिगत आत्म विकास और दूसरा सामाजिक व्यवस्था। जड़ वस्तुओं के अधिक संग्रह से मुनष्य की आत्म चेतना दब जाती है और उसका विकास अवरुद्ध हो जाता है। जब एक मनुष्य किसी वस्तु का अधिक संग्रह करता है, तब दूसरे मनुष्यों को उस वस्तु की कमी भोगनी पड़ती है। संग्रह की वजह से समाज में विषमता और अव्यवस्था पैदा होती है। परिग्रह सब पापों की जड़ है। जब तक परिग्रह, संग्रह–वृत्ति, पर नियन्त्रण नहीं किया जायेगा तब तक दूसरे पाप रुक नहीं सकते। श्रावक का यह अपरिग्रह अणुव्रत परिग्रह–परिमाण–व्रत के नाम से भी प्रसिद्ध है क्योंकि गृहस्थ सम्पूर्ण रूप से अपरिग्रही नहीं बन सकता। अतः उसके लिए यही उचित है कि वह अपनी इच्छाओं को सीमित करे तथा तृष्णा, लालसा का दमन कर उन्हें एक सीमा से आगे न बढ़ने दे। जैन धर्म समता का पक्षपाती है,

इसलिए जाति–वर्ग हीन समाज की स्थापना करना चाहता है, जिसमें सबको उन्नति का समान अवसर प्राप्त हो और किसी का शोषण न हो। इसके अनुसार जन्म और वंश से कोई ऊंचा या नीचा नहीं होता बल्कि व्यक्ति का आचरण ही उसे सामाजिक प्रतिष्ठा या अप्रतिष्ठा का पात्र बनाता है। परिग्रह–परिमाण–व्रत जैन धर्म के द्वारा समाज में स्वेच्छा से आर्थिक समता लाने का प्रयास है।

ब्रह्मचर्य व्रत का उद्देश्य संयम द्वारा काम वासना का शमन करके शरीर एवं मन की शक्तियों को सुरक्षित रखना और उन्हें सत्कार्यो व सत्प्रवृत्तियों में नियोजित करना है। ब्रह्मचर्य की पूर्ण साधना महाव्रती साधुओं द्वारा ही संभव है। गृहस्थों के लिए यथाशक्य ब्रह्मचर्य पालन का तथा स्वस्त्री–संतोष का उपदेश दिया गया है।

जैनाचार्यो ने उत्तम क्षमा, मार्दव, आर्जव, शौच, सत्य, संयम, तप, त्याग, आकिंचन्य और ब्रह्मचर्य **धर्म के दस लक्षण** बताए हैं। उत्तम शब्द का विशेषण लगाने से आचार्यो का अभिप्राय यह है कि धर्म को ख्याति, लाभ या मान–बड़ाई या स्वार्थ–सिद्धि का साधन न बनाकर वास्तविक रूप में आत्म शुद्धि एवं लोक परलोक हित की वांछा से मन, वाणी व कर्म से साधना द्वारा धर्म को अपने दैनिक जीवन में चरितार्थ करना चाहिए।

क्रोध, मान, माया और लोभ का शमन ही उत्तम क्षमा, मार्दव, आर्जव एवं शौच धर्म का पालन करना है। मिथ्या भाषण से विरति सत्य धर्म, मन और इन्द्रियों को विषयों से विरत कर वश में करना संयम धर्म, और इच्छाओं का निरोध करना तप धर्म है। स्वार्थपरता, दुर्वासनाओं और दुर्भावों का परित्याग करके परोपकार की भावना उत्पन्न हो जाने का नाम त्याग धर्म है। काम एषणा का त्याग ब्रह्मचर्य धर्म है।

भादों मास के अन्तिम दस दिनों में इन दस धर्मो की जैन धर्मावलम्बी विशेष रूप से उपासना–पूजा करते हैं तथा अपने जीवन में इन्हें अधिकाधिक उतारने का प्रयास करते हैं। इसे **दशलाक्षणी पर्व** कहा जाता है जो जैनों का सर्वाधिक महत्वपूर्ण धार्मिक पर्व है। इस पर्व में धर्म ध्यान का सबसे अधिक महत्वपूर्ण अंग है अपने दोषों और पापों की प्रतिदिन आलोचना करना तथा उनका प्रायश्चित करना। दशलाक्षणी पर्व की समाप्ति आश्विन कृष्ण प्रतिपदा को क्षमा धर्म की पूजा से होती है। उस दिन प्रत्येक व्यक्ति एक दूसरे से अपने अपराधों की क्षमा मांगता है तथा स्वयं भी दूसरों की त्रुटियों के लिए क्षमा प्रदान करता है और सब एक दूसरे को गले लगाते हैं।

मित्ति में सव्व भूएसु, बैरं मज्झं णं केणवि।

(प्राणी मात्र से मेरी मैत्री हो, किसी से भी बैर न हो)

✧✧✧

नारी की मर्यादा

- श्रीमती मंजरी जैन

सृष्टि के दो मुख्य उपादान हैं – नर और नारी। जिस प्रकार प्राकृतिक नियमन के लिए धन और ऋण गुणों की आवश्यकता होती है उसी प्रकार मानव जाति की कल्पना बिना नर और नारी के सम्भव नहीं है। कोई भी सामाजिक व्यवस्था इन दोनों के परस्पर समन्वय पर ही आधारित हो सकती है।

वास्तव में **सृष्टि के मूल में नारी** ही है, तभी प्रकृति को और भूमि को नारी के रूप में देखा गया है। इसके सहज गुण हैं – उत्पत्ति करना, पोषण करना, धैर्य रखना और क्षमा करना। इन्हीं गुणों के आधार से मानव ने आदिम युग में ही नारी की 'अम्बा देवी' या 'मातृ देवी' के रूप में अभ्यर्थना की। **मातृ–देवी** की पूजा का प्रचलन आदिम युगीन संस्कृतियों में तो था ही, सभी ज्ञात प्राचीनतम ऐतिहासिक संस्कृतियों में भी उसका प्रचलन प्राप्त अवशेषों से विदित होता है। हमारे देश की प्राचीनतम सभ्यता 'सिन्धु घाटी की सभ्यता' मानी जाती है जिसका काल लगभग 5000 वर्ष पूर्व आंका गया है। इस सभ्यता के अवशेषों में भी मातृदेवी की पूजा के चिन्ह मिले हैं। अन्य प्राचीन सभ्यताओं, यथा मध्य एशिया की सुमेर–बेबिलोन की सभ्यता, में भी 'मां अम्बे' की पूजा का प्रचलन रहा था, ऐसा पुरातत्ववेत्ताओं का मत है।

वैदिक आंर्यो में प्रारम्भिक काल में कदाचित् नारी को वह प्रतिष्ठा नहीं प्राप्त थी जो कि उसे अन्य सभ्यताओं में प्राप्त थी। वेदमन्त्र प्रायः पुरुष शक्ति को सम्बोधित हैं और वैदिक ऋषियों में भी प्रायः पुरुष ही हैं। वैदिक ऋचाओं के रचने वालों में केवल तीन महिलाओं के नाम प्राप्त होते हैं जो विश्ववरा, अपाला और घोषा हैं। उपनिषद् काल में भी केवल गार्गी और मैत्रेयी के नाम उपलब्ध होते हैं। सम्भवतः **आर्य संस्कृति में पुरुष –प्रमुखता** ही आगे चलकर **मनु** के **धर्मशास्त्र** में नारी के लिए किंचित् अभिशप्त स्थिति का निरूपण करने के लिए उत्तरदायी है। मनु के अनुसार नारी के लिए स्वातन्त्र्य निषिद्ध है। प्रायः मनु के इस वाक्य को लेकर कि जहां नारी की पूजा होती है वहां देवता निवास करते हैं, यह कह दिया जाता है कि मनु का दृष्टिकोण नारी के प्रति उदार था। परन्तु ऐसी

एक दो उक्तियों से मनु के दृष्टिकोण में नारी के प्रति उदारता का पोषण बहुत समीचीन नहीं है। वास्तव में जिस परम्परा के अन्तर्गत् मनु ने अपना विधान बनाया, उसमें नारी को स्वतन्त्र स्थान प्राप्त था ही नही। यज्ञ आदि में नारी को तभी स्थान प्रदान करने का प्रश्न उठता था जब यज्ञ–विधि किसी कारण उसके बिना पूरी न की जा सके और उसमें भी नारी को कुछ ऐसे रूप में रखा जाता था जो यज्ञकर्ता के शक्ति–संचय का माध्यम मात्र हो। अतः मनु के दृष्टिकोण में और उनके **धर्मशास्त्र** से निसृत व्यवस्था के अन्तर्गत नारी को समानता का अथवा सम्मान का स्तर दिए जाने के लिए उपयुक्त आधार नहीं था।

भारत की **श्रमण परम्परा** में नारी के प्रति अधिक उदार दृष्टिकोण अपनाया गया प्रतीत होता है। इस परम्परा के दो प्रतिनिधि **धर्म क्रमशः जैन–धर्म** और **बौद्ध–धर्म** हैं। दोनों ही धर्मो में चतुर्विध संघ की व्यवस्था की गई है जिसमें नर और नारी को समान रूप से सम्मिलित किया गया है। इस चतुर्विध संघ के अंग हैं, उपासकों में श्रावक और श्राविका, तथा गृह–त्यागियों में भिक्षु–भिक्षुणी या मुनि–आर्यिका। इस संदर्भ में यह उल्लेखनीय है कि यद्यपि **महात्मा बुद्ध** ने उपासकों के रूप में स्त्रियों को प्रारम्भ से ही स्वीकार कर लिया था, उन्हें भिक्षुसंघ की सदस्या के रूप में स्वीकार करने में बुद्ध को काफी अन्तर्द्वन्द का सामना करना पड़ा था और अपनी मौसी तक को दीक्षित करने में उन्हें काफी असमंजस रहा था। परन्तु बुद्ध के समकालीन **तीर्थंकर महावीर** को स्त्रियों को भी अपने मुनिसंघ में सम्मलित करने में प्रारम्भ से ही कोई आपत्ति रही थी, इसका उल्लेख साहित्य में नहीं मिलता। एक विशिष्ट घटना का सम्बन्ध महावीर से जुड़ा हुआ है और वह है चन्दनबाला का दासी अवस्था में महावीर को आहार कराना और अन्ततः महावीर के संघ में दीक्षित होकर उनकी आर्यिका–संघ का प्रधान बनना। यह घटना इस बात का स्पष्ट संकेत करती है कि महावीर को स्त्रियों के विरुद्ध कदाचित् कोई पूर्वाग्रह ऐसा नहीं था कि वह उनके बताए हुए तपस्या और सदाचार के मार्ग पर चल न सकेंगी।

जैन धर्म में नारी को समादर की दृष्टि से देखा गया है और पूजा आदि विधानों में उन्हें समान भागीदार बनाया गया है। श्राविकाओं को पूजा करने का उतना ही अधिकार है जितना कि श्रावक को।

जैनों की समाज व्यवस्था पर जैनेतर हिन्दू समाज व्यवस्था का प्रभाव रहा है और इसके कारण सामाजिक दृष्टि से नारी के प्रति दृष्टिकोण

में जैन समाज और जैनेतर हिन्दू समाज में विशेष अन्तर नहीं है। जैन कथा साहित्य में लोक–संस्कृति का जो रूप उभरता है उसमें बहु–विवाह, नारी द्वारा पति को इष्ट देव के रूप में मानने और नारी को आर्थिक रूप से पति अथवा पुत्रों के ऊपर आश्रित होने, के उल्लेख मिलते हैं। यह रूप समान्य भारतीय समाज का चित्र प्रस्तुत करता है जिसमें स्त्री को भोग्या, अबला और आश्रिता के रूप में सामान्यतया देखा गया है। तो भी **जैन कथाओं** में एक यह **विशिष्टता** रहती है कि नारी चरित्र को उदात्त रूप में प्रस्तुत किया गया है और उसकी धार्मिक क्षेत्र में समानता को अक्षुण्ण रखा गया है। यह विशिष्टता जैन कथा साहित्य को एक ऐसा महत्व प्रदान करती है जो उसे भारतीय समाज में नारी की मर्यादा के समुचित मूल्यांकन के लिए एक आवश्यक स्रोत बताता है।

समाज में नर–नारी के सम्बन्धों में एक समन्वयात्मक एकात्म होना अपेक्षित है। यह तभी सम्भव है जब दोनों को एक सीमा तक समानता का स्तर प्रदान किया जाये। सदाचार के यदि कोई नियम सामाजिक व्यवस्था के लिए निर्धारित किए जाते हैं तो उनका विधिवत पालन पुरुष के द्वारा भी उतना ही होना अभीष्ट है जितना कि स्त्री के द्वारा। इस बात को जैन धर्म में सिद्धांततः माना गया है और आर्यिका को श्रावक और मुनि के समकक्ष स्तर प्रदान किया गया है। इस दृष्टिकोण का और उसी के फलस्वरूप धार्मिक क्षेत्र में श्राविका का कुछ प्रभाव प्रत्यक्ष–परोक्ष रूप से सामाजिक जीवन पर भी पड़ा है और इसके परिणामस्वरूप जैन समाज में प्रायः बहु–विवाह एवं अन्य कुरीतियों के उदाहरण कम मिलते हैं। जैन साहित्य में भी इसकी प्रतिच्छाया दीख पड़ती है यद्यपि सामाजिक चित्रण बहुत कुछ सामान्य जन जीवन के अनुरूप है जिस पर देश और काल की परिस्थितियों का अधिक प्रभाव है, तो भी धर्माचरण में प्रवृत्ति, जैन नारी की विशेषता बनाये रखी गई है।

निष्कर्ष

किसी भी जाति और राष्ट्र की समुन्नति का मूलाधार उसकी नारियां हैं क्योंकि उन्हीं पर प्रथमतः देश के भावी नागरिकों के निर्माण का दायित्व होता है। यदि नारियां आत्म–विश्वास और आत्म–सम्मान से सम्पन्न होंगी तो वे ये गुण अपने बच्चों में भी सहज रूप से प्रतिस्थापित कर सकेंगी। अतएव यह आवश्यक है कि नारी को एक ऐसी मर्यादा प्रदान की जाये जिसमें उसे समानता का स्तर सहज ही मिल जाये और वह किसी हीन–भावना से अपने को ग्रसित न होने दे। आवश्यक यह है कि

वह अबला और आश्रिता न रहे, यह आवश्यक नहीं है कि वह सबला और स्वामिनी हो जाये। जो चित्रण नारी चरित्र का और नारी के स्वभाव का आधुनिक कथा साहित्य में किया जाता है, वह प्रायः एक पूर्वाग्रह से उद्भूत है क्योंकि उसकी कल्पना करने वाला अधिकांश पुरुष होता है। जो नारी लेखिकाएं भी हैं वे भी साहित्यिक परम्पराओं के घेरे में बंधकर उसी पूर्वाग्रह का पोषण करने लगती हैं। इस सब का एक प्रभाव यह होता है कि साहित्य में जो चित्रण उपलबध होता है वह प्रायः एकांगी होता है और कदाचित् सामाजिक स्थिति की यथार्थता को प्रदर्शित नहीं करता। इस प्रसंग में मैं लेखक–वृन्द से यह निवेदन करना चाहूंगी कि वे साहित्य में नारी के प्रति अपना पूर्वाग्रह छोड़ कर सम्मानप्रद समानता का दृष्टिकोण अपनावें।

(भगवान महावीर के 2500वें निर्वाण महोत्सव के उपलक्ष में 26 से 29 अक्टूबर 1975 को **भारतीय संस्कृति में जैन विचारधारा** विषयक संगोष्ठी का आयोजन किया गया था। उस संगोष्ठी के "भारतीय लोक–संस्कृति का जैन पक्ष" विषयक सत्र में यह शोधपत्र प्रस्तुत किया गया था। इसमें प्रस्तुत विचार आज भी प्रासंगिक और चिन्तनीय हैं। – सम्पादक)

ज्योति निकुंज, चारबाग, लखनऊ–226004

✧✧✧

गीत

अब तक सुख दुख की परिभाषा भाषित कर न सके

– श्री कृपाशंकर शर्मा 'अचूक'

जीवन नगरी पर सदियों से शासित कर न सके
अब तक सुख दुख की परिभाषा भाषित कर न सके
किसी किसी को दृष्टि दोष ने दूषित कर डाला, कोई तो है अमृत पीता और कोई हाला
उछल रहा बाजार अजब सा धीरज धर न सके।
अब तक सुख दुख की परिभाषा भाषित कर न सके।।
पंखों बिन उड़ान हैं भरते नील गगन नीचे, जिसकी जैसी ताकत होती इधर उधर खींचे
दोनों ओर लगी हैं होड़ें नदी उतर न सके।
अब तक सुख दुख की परिभाषा भाषित कर न सके।।
चौबे जी छब्बे बनने में सब कुछ भूल गए, चकाचौंध जग की में आके उलटे फूल गये
उधड़ बुनी के चक्कर खाते तनिक सुधर न सके।
अब तक सुख दुख की परिभाषा भाषित कर न सके।।
जोड़ रहे सब अपनी–अपनी कटी हुई नाकें, अपनी ओर कभी ना देखा दुनियां को ताकें
गज भर की 'अचूक' छाती ले खुद से डर न सके।
अब तक सुख दुख की परिभाषा भाषित कर न सके।।

✧✧✧

38–ए, विजय नगर –1, करतारपुरा, जयपुर–302006

जैन दार्शनिक चिन्तन

- डॉ. शशि कान्त

लोक या जगत

जैन दार्शनिक चिन्तन के अनुसार लोक या जगत शाश्वत है, अनादि–निधन है अर्थात् इसका न आदि है और न कोई अंत है। इसका कोई कर्ता भी नही है और नियामक भी नहीं है। यह 6 द्रव्यों पर आधारित है। ये 6 द्रव्य जीव, पुद्‌गल (अजीव), धर्म, अधर्म, आकाश और काल हैं।

जीव चैतन्य स्वरूप है।

पुद्‌गल अजीव है और चेतना विहीन है। पुद्‌गल का अविभाज्य सूक्ष्मतम अंश अणु है।

धर्म जीव और अजीव के सम्पर्क को चालित करता है और **अधर्म** उस चलन को स्थिरता प्रदान करता है।

आकाश सम्पूर्ण जगत को अपने में समेटे हुये है और यह असीम है। इसका अविभाज्य सूक्ष्मतम अंश प्रदेश है। आकाश के जितने भाग में छहों द्रव्य विद्यमान रहते हैं उसे लोकाकाश कहते हैं। लोकाकाश के बाहर भी आकाश व्याप्त है।

काल अनन्त है और सर्वव्यापी है। जीव–अजीव के बीच जो क्रियाशीलता व्याप्त है वह काल के परिमाण में आती है। काल का अविभाज्य सूक्ष्मतम अंश समय है। एक अणु से दूसरे अणु तक सम्पर्क होने में जितना काल व्यतीत होता है वह समय कहलाता है।

वस्तु

प्रत्येकं **वस्तु** जो भी लोक में व्याप्त हैं, की **तीन अवस्थायें** होती हैं ज़िन्हें उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य के नाम से जाना जाता है। तात्पर्य यह है कि उस वस्तु का उत्पाद यानि उत्पत्ति होती है। तत्पश्चात् उसका क्षरण या व्यय होता है। तब भी उसका मूल रूप स्थित रहता है अर्थात् ध्रुव रहता है। निरन्तर परिणमन या परिवर्तन से वस्तु की पर्याय बदलती रहती है।

अनेकान्त

अनेकान्त जैन दार्शनिक चिन्तन का विशिष्ट पक्ष है। अनेकान्त से तात्पर्य यह है कि किसी भी वस्तु या स्थिति को एक ही दृष्टि से न देखा जाये। दूसरे की दृष्टि में वह कुछ आ सकता है जो हम नहीं देख पाये या समझ पाये। इसका सीधा तात्पर्य यह है कि दूसरे के मत को भी महत्व

दिया जाना चाहिये। जो भिन्न मत हो उसके प्रति माध्यस्थ भाव रखना चाहिये। अनेकान्त की दृष्टि समन्वयवाद, सहिष्णुता और सह–अस्तित्व को प्रेरित करती है।

The Jain Speculative Thought

Cosmos

According to the Jain speculativ thought the cosmos or universe is eternal; it has no beginning or end. There is no Creator or Dispenser.

The cosmos is based on 6 elements. These elements are Jīva, Ajīva (Pudgala), Dharma, Adharma, Ākāśa, and Kāla.

Jīva is designated as soul. It is consciousness permeated.

Ajīva or Pudgala is matter which does not have consciousness. Its indivisible minutest particle is Aṇu.

It is the fusion of the Aṇu or particles of matter with the particles of conscious Jīva which results in the creation of cosmos.

Dharma is the principle of motion. The particle of Jīva and Ajīva constantly move because of the principle of motion.

Adharma is the principle of rest. Movement must stop at a certain point. That point denotes the stationary position. But movement does not cease and the process goes on.

Ākāśa is space. Space is limitless. It contains the total cosmos. Its indivisible minutest part is Pradeśa. The part of space where all the 6 elements exist is called Lokākāśa. Beyound that there is still space and it is called Alokākāśa.

Kāla or time is infinite like the innumerable Aṇu of Jīva and Pudgala. The individual minutest part of Kāla is Samaya which is the time taken by one Aṇu to reach the other Aṇu.

Vastu (Substance)

Every substance which fills the cosmos, has three stages. These stages are birth, decay and eternity. It means that whatever is born or grows, it gradually decays or is spent, but its original

stage stays. All the time there is movement and with every movement there is change. This change results in different modes or forms.

Anekānta (Multi-lateral thought process)

Anekānta is an importent dimension of the Jain speculative thought. It promotes the temper of giving due consideration to the views of others, howsoever divergent or contrary they may be to our view. We should appreciate that everything or event is multilateral. We think about it from one point of view but there may be other aspects also. The temper of Anekānta should lead to an atmosphere of tolerance and peaceful co-existence. It is antithesis to dogmatism or fundamentalism.

✧✧✧

अहिंसा-व्रत सर्वोत्तम

- डॉ. परमानन्द जड़िया

भोगवाद आनन्द, साधना–पथ का सम्भ्रम।
है निवृत्ति का मार्ग मोक्ष दायक सर्वोत्तम।।
'जड़िया परमानन्द' न बनिये स्वेच्छाचारी।
इन्द्रिय–निग्रह सन्त, नित्य रहते अविकारी।।

पशुओं में भी प्राण, न उनका वध हितकर है।
आमिष भोगाचार बुद्धिनाशक दुखकर है।।
'जड़िया परमानन्द' अहिंसा व्रत सर्वोत्तम।
दया, क्षमा, औदार्य, शांति का करो उपक्रम।।

जिनका सरल स्वभाव, किसी से नहीं झगड़ते।
स्वाभिमान से पूर्ण किसी के पांव न पड़ते।।
विद्या–धन भरपूर, काव्य कौशल गुण आगर।
होता 'परमानन्द' धन्य जग उनको पाकर।।

सर्वोपरि है कर्म, कामना रहित अगर हो।
पर–पीड़ा उद्वेग–द्वेष का नहीं ज़हर हो।।
मानव 'परमानन्द' धन्य जो पर–हितकारी।
शास्त्र विहित सद्धर्भ निरत जो मंगलकारी।।

नहीं द्रव्य से काम, भजन भगवान भरोसे।
रहते हैं जो सन्त पूज्य प्रिय देव जनों से।।
'जड़िया परमानन्द' कृपा उन पर प्रभु करते।
भर देते भण्डार, दोष–दुर्गुण सब हरते।।

जड़िया निवास, 189/51, खत्री टोला, मशंकगंज, लखनऊ–226018

✧✧✧

Iconology

Evolution of the Jina Image

- Dr. Ram Kumar Dikshit

All the three great religions that originated in Bhāratavarsha, *viz.,* Brahmanism, Jainism and Buddhism, believe in image worship. However, none of them started with idol worship. It was adopted by them only at a later stage in their history.

Jainism, like Brahmanism, has an elaborate pantheon, consisting of a number of male and female divinities of various categories - the principal objects of worship being the twenty-four Tīrthaṅkaras regarded as *devadeva* or *devāḍhideva.* Their images are ceremoniously installed in the temples and worshipped by the devotees. The Jains do not worship any 'god', but regard their Tīrthaṅkaras as fit objects of worship. They not only instal their images in the temples but have also translated the important events of their lives into stone or bronze so that the devotees may be inspired by them.

The origin of Jainism goes back to hoary antiquity, but it is not easy to determine when the anthropomorphic image of the Tīrthaṅkara first came into existence. There is considerable divergence of opinion among modern scholars on this issue. The discovery of a nude male torso in red sandstone at Harappa has led some scholars to believe in the existence of the icons of the Tīrthaṅkaras in the Harappan age.[1] Other scholars, however, are sceptical about it.[2] Likewise, the Lohanipur torsos of naked male figures – one polished and the other unpolished - are cited to prove the existence of image worship among the Jains in the Maurya-Śuṅga period. Support to this view is also lent by the Hāthīgumphā Inscription of Khāravela, which refers to the recovery and reinstallation of (an image of) the Jina which had been carried away from Kaliṅga by Nandarāja. These isolated notices, however, do not enable us to trace the evolution of the Jina image, for which we have to depend mostly on the Mathura finds.

Stages in evolution

In ancient times, Mathura was an important centre of Jainism. A very early Jaina *stūpa,* styled *devanirmita stūpa* in an inscription,[3] that existed there has been assigned to 3rd century BC. The excavations at Mathura, particularly those conducted at the site of Kankali Tila (the site of an important Jaina *stūpa*) have yielded a number of sculptural and architectural pieces which throw very valuable light on the problem under review.

Firstly, we have to take note of the several *āyāgpaṭṭa* recovered from the Kankali Tila, ascribed to the Scythian period of Indian history on palaeographic grounds. These slabs were installed round the *stūpa* to receive offerings and for worship. One of them actually illustrates their position round the stūpa where worshippers are offering flowers heaped on their platforms.[4] Some of these *āyāgpaṭṭa* contain a diminuitive figure of the Tīrthaṅkara, seated in *padmāsana* in the centre of the tablet, surrounded by other auspicious (*maṅgala*) symbols, such as a *svastika,* a pair of fish (*mīna-mithuna*), *tri-ratna*, etc.[5] In the earlier of these *āyāgpaṭṭa,* however, we do not notice the figure of the Tīrthaṅkara : his place is taken in them by a symbol– a *stūpa*[6] or a *dharmachakra*[7]. This has led to the inference that in the beginning the Tīrthaṅkaras like the Buddha, were represented only aniconically. Anthropomorphic representation came later. If this view is correct, these votive tablets represent the earliest stage in the evolution of the Jina figure. These figures are 'devoid of any mark of classical influence and are purely of Indian origin', representing the conventional type of the yogi seated erect in meditation.

The next stage in the evolution of the Jina image is noticed in the Kushāṇa period, when we begin to get their independent images. They represent two distinct types – (1) seated cross-legged in *dhyāna mudrā* and (2) standing erect in *kāyotsarga* pose. These images have certain distinctive features, *viz.*, stiff posture, elongated arms, youthful appearance, serenity, nudity and *Śrīvatsa* symbol on the chest – thus conforming to literary tradition.[8] They also show chakra symbols on their palms and soles, and some of them are provided with a halo around their

head. As already stated, they represent a distinct type in Indian sculpture – *viz.*, the Yogi type, and bear strong resemblance to the Dakshiṇa–mūrti of Śiva and the image of the Buddha. As a matter of fact, except for the Śrīvatsa symbol it would be difficult to distinguish between a seated Jina image and a seated image of the Buddha in *dhyāna mudrā.* The images of the Tīrthaṅkara belonging to the Kushāṇa age have no *lāñchhana*, and consequently it is not possible to distinguish one Tīrthaṅkara from the other – unless his name is inscribed on the pedestal,[9] nor is it possible to find out whether an image belongs to the Digambara or the Śvetāmbara sect.

The Kushāṇa–age images, again, are not provided with the figures of the attendant Yakshas and Yakshiṇīs, but some of them have been provided with the figures of chowri–holding gaṇadharas, one on each side of the Tīrthaṅkara. The pedestals of this age deserve more than a passing notice; they portray the figures of two lions supporting the *siṁhāsana*, a *dharmachakra* in the middle, and several worshippers, both male and female.

There is remarkable development in the make up of the Tīrthaṅkara image in the Gupta age. Each Tīrthaṅkara is now provided not only with a distinct *lāñchhana* but is also flanked by distinct figures of Yaksha and Yakshiṇī attendants. These new features help in identifying the images of different Tīrthaṅkaras. Other points of distinction from the earlier age are – ornamental halo, hair arranged in short schematic curls and the pedestals occasionally portraying a pair of deer and the figures of the planets.[10] Some of them also seem to have an *ushṇīsha* and a small *ūrṇā.*[11]

The composition becomes more elaborate in the later Gupta and mediaeval ages. In addition to the figure of the Tīrthaṅkara and those of the Śāsana-devatās and Gaṇadharas, a complete image of this period also shows the particular tree under which the Tīrthaṅkara attained the supreme knowledge, and the eight *prātihārya*, *viz.*, the heavenly tree (*divya taru*). throne (seat), trilinear umbrella, halo, drum, showers of celestial blossoms, a pair of chowries, and heavenly music. Several such images of the mediaeval period are preserved in Lucknow Museum. One of

them shows Tīrthaṅkara Mallinātha as a female, conforming to the Śvetāmbara tradition. Śvetāmbara images of this period also portray the Tīrthaṅkara with a piece of cloth to conceal his nudity. Some of the later texts, like the ***Rūpamaṇḍana*** (vi.4) also ordain that the images of different Tīrthaṅkaras should be shown in different colours.

----

1 B.C. Bhattacharya : **The Jaina Iconography**, 2nd ed., Foreword, p.x and n.1.

2 *cf.* Agrawala, V.S. : **Indian Art**, pp 21-22. According to him it represents the type of nude God referred to in the **Atharva Veda** as *Mahā Nagna.* Some scholars also doubt their ascription to the Indus Valley age, *cf.* Wheeler, M. : **The Indus Civilization**, p 66.

3 *E.I.*, II, 20

4 Smith, V. : **Jaina Stupa**, pl.xx ;Āyāgpaṭṭa No. J.555, Mathura Museum.

5 *cf.* J. 249 in Lucknow Museum and J. 255 in Mathura Museum.

6 *cf.* J. 255 in Lucknow Museum and Q 2 in Mathura Museum.

7 *cf.* J. 248 in Mathura Museum; **Jaina Stupa**, pl. viii.

8 *cf.* **Bṛihat Saṁhitā**, 58.45.

9 The images of Ṛishabhanātha and Supārśvanātha or Pārśvanātha alone have some distinct features - the former have loose locks falling down on the shoulders, and the latter are provided with nāga-hood (serpent-hood) canopies.

10 *cf.* *J.U. P.H.S.*, xxiii, p 56 no. B75.

11 *cf.* *Ibid*, p. 54 no. B45.

[Dr. Dikshit (1908-79) was Professor and Head of the Department of Ancient Indian History & Archaeology, Lucknow University. He was an authority on Indian Iconology. This paper was presented by him at the 4-day Seminar on "Jain Thought in Indian Culture", in the session on 'the contribution of Jains in the development of Indian Art' on Oct. 27, 1975. This paper is being reproduced so that the inquisitive students of Indian Art and Archaeology may be benefitted. - Dr. Shashi Kant]

SUCCESS

- Miss Sanchita Mittal

The time has come
To leave behind the fun.
Get engaged in studies
Forgetting your buddies.
Achieve new heights
By taking success flights.
Sentiments are to be aside
To be a diamond bright.
No one will remember you
In crowd, your name will flew.
So you have to be unique
To avoid betrayal treat.
Then people will recognize
You as a person wise.
Honor and respect will be given
Which will transport you to a heaven.
Your story will have a happy ending
With no curves and no bending.

*

Holi

Pink, blue, red, yellow,
Colours are applied by dear fellow.
One more festival has come,
People are lost in their fun.
I can smell the colours in air,
Even birds are also enjoying in pair.
But I am slowly realising ,
How the things are changing.
From my sister to me,
The time hurriedly flee.
I remember when I was a small kid,
I too roamed in colonies with my pichkaries filled.
Yet 'm not that big,
But this thing in my mind clicked
Now I smile,
I was transported to my flashback for a while.
But every stage is special in its own,
The colours of happiness are always blown.

(Baby Sanchita, class XI, is a born prodigy. Her poem in Hindi was published in Shodhadarsh 74 in November 2011.)

बीस न तेरा : आगम-पंथ मेरा

- श्री सुरेश जैन 'सरल'

अमेरिका में बसे हुए जैन–भाईयों में अनेक अच्छाइयां पाई हैं मैंने। जो सबसे अच्छी बात है वह यह है कि वहां भारत से किसी भी पंथ का जैन पहुंचे, उसे वे समान रूप से सम्मान और वात्सल्य प्रदान करते हैं। वे कहते हैं – 'ये बीस पंथ या तेरह पंथ तक विचार संकीर्ण रखना हमें नहीं पुसाता। हमारे यहां चाहे सोनगढ़ के अतिथि आवें चाहे समैयावर्ग के, चाहे दिगम्बर आम्नाय से आवें चाहे श्वेताम्बर से, हमारे लिए वे एक संयुक्त जैन हैं। हम केवल **जैन** शब्द को अपना आदर, धन और समय लुटाते हैं।'

सच भी है, वहां एक ही मंदिर में सभी पंथों का निर्वाह भी आनंदपूर्वक होता है।

कभी विचार किया कि वहां वैचारिक–एकता क्यों है? सत्य तो यह है कि वहां मात्र जिनोपासक जैन हैं, जिनेन्द्र–भगवान के आराधक जैन हैं। नहीं हैं कोई, तो वे हैं साधु–संत और पंडित। अमरीकी जैन कहते हैं कि आगम के समस्त प्रामाणिक ग्रंथों में कहीं, किसी पन्ने पर, बीस या तेरह या अन्य वर्ग की चर्चा नहीं देखी गई है। वहां, उनमें पंथ या वर्ग का झमेला ही पढ़ने–सुनने को नहीं मिलता।

हमारे भारत में रह रहे विद्वान भी स्वीकार करते हैं कि जैन–वाङ्मय में, सिद्धान्त ग्रंथों में किसी पंथ पर प्रकाश नहीं डाला गया है। पंथ की बात ही नहीं है उनमें। तो फिर हमारे श्रावक और संतगण पंथों से क्यों बंधे मिलते हैं? वे निर्बन्ध कब होंगे? कब छोड़ेंगे अपने बंधन! कहा जाता है कि संतों के मन में कोई ग्रंथि नहीं होती, तो फिर यह पंथ की गठान कहां से आ गई? **मूलाचार** और **समयसार** सतत् बाजौट पर विराजमान रखने वाले संत गण ग्रंथि रहित कब होंगे? वे अपना परिचय 'निर्ग्रन्थ – साधु' के रूप में अवश्य छोड़ते हैं समाज में, परन्तु 'निग्रन्थि साधु' वे कब बनेंगे? जो कतिपय संत 'निर्ग्रंथ' और 'निर्ग्रन्थि' हैं उन्हें नमन करता हूं, मगर जो गठान खोलने का मन ही नहीं बना पा रहे हैं, उनके विचार–विमर्श हेतु है यह लेख, क्योंकि पंथ के चक्कर में वे एक दूसरे पर वात्सल्य नहीं छिड़क पा रहे हैं। बीस वाला तेरह के पास और तेरह वाला बीस के समीप आने–जाने में झिझक रहे हैं, कषाय कर रहे हैं, श्रावक देख रहे हैं। दो 'महान संत' धर्म, समाज और देश के हित में एक नहीं हो पा रहे हैं,

'समाचारी' से बचने का प्रयास कर रहे हैं। वर्तमान में 'मिलन' के समाचार और चित्र तो प्रकाशित हो रहे हैं, पर मन नहीं मिल पा रहे हैं। जब गुरु मिलने का उत्साह नहीं बतलाते तो भक्त क्यों बताएंगे? कमेटियां क्यों मिलवाना चाहेंगी? मिलन की भावना तो पहले दो विभिन्न–पंथी संतो के मनों में उठनी चाहिए, सच – भक्तगण तो सिर के बल चलकर सच्चा प्रयास करेंगे उन्हें मिलाने का। संत नित्य जिनवाणी रूपी गंगा बहाते हैं, वे उस गंगा में पंथ रूपी घास–फूस को कब बहायेंगे?

जिन संतो के मूलगुण – 28 और 36 – के अंकों तक प्रकाशित हैं, वे पूज्य संतगण मूलगुणों और मूलाचार की ध्वनि कब सुनेंगे? मूलगुणों और मूलाचारों में कहीं भी पंथ रूपी दीवालों के अंदर रहने की चर्चा नहीं की गई है, फिर ये 13 और 20 की दीवालों में कौन सी सीमेन्ट लगाई जा रही है जो श्रावक को श्रावक से नहीं मिलने दे रही है?

संतगण सम्मेलन या अधिवेशन न करें, ठीक है, पर वे पंथों के विषय में अपने विचार लिख कर पत्र–पत्रिका तक तो भिजवा ही सकते हैं जिस तरह समाचार और चित्रों को भेजा जा रहा है। जो संत लिखना न चाहें, वे अपने प्रवचन पीयूष की गंगा प्रवाहित कर श्रावक रूपी घाटों पर जमी पंथवाद रूपी काई को तो बहा ही सकते हैं। काई बह जावे, श्रावक निर्मल हो जावे तो, तो समाज और धर्म की कई गुणित भलाई हो सकेगी।

श्रावक, बाजार की कोई बिकाउ जिन्स नहीं है कि उस पर तेरह या बीस, सोनगढ़ या समैया, श्वेताम्बर या दिगम्बर, का लेबल चिपकाया जावे और झूठ–मूठ का ब्रान्डेड आइटम बनाया जावे। हमारा पवित्र ब्रान्ड **'जिन'** है – **'जैन'** है। अब इसके ऊपर अन्य ब्रान्ड न चिपकाएं तो अच्छा हो। 'जिनेश' और 'जिनेन्द्र' की जय बोलने वाले श्रावकों को झूठे ब्रान्ड के कारण किस–किस की जय बोलनी पड़ रही है, इस पर तो विचार करें। जब हमारा धर्म स्पष्ट संकेत करता है कि कु–देव तथा कु–गुरु से बचना चाहिए, तब फिर श्रावक–समूह को "कु" के चक्कर में क्यों फंसाये रखना चाहते हैं? धंधेबाज लोग अपने ब्रान्ड को ऊंचा बताएं तो कोई बात नहीं, पर धर्मबाज/धर्मात्मा/धार्मिक लोग क्यों ब्रान्डों के चक्कर में पड़ रहे हैं? बीस या तेरह पंथ अच्छा है क्या 'जिन–पंथ' से – 'आगम–पंथ' से? अतः अब श्रावकों को स्वतः अपने आत्म–विकास का परिचय देना होगा और ब्रान्ड रूपी दीवालों को निर्ममता से ध्वस्त करना होगा।

तथाकथित बड़ों ने श्रावकों पर ही लेबल या ब्रान्ड नहीं लगाए हैं, वे मंदिरों और तीर्थक्षेत्रों पर भी अपने लेबल लगा रहे हैं। जो मंदिर कल

तक तीर्थंकर पार्श्वनाथ का मंदिर था, वह अब बीसपंथी का परिचय पा रहा है, और जो भगवान महावीर का था, वह आजकल तेरहपंथी कहा जा रहा है। एक मंदिर का नाम सोनगढ़ी कर दिया तो एक का नाम 'समैयों का मंदिर' हो गया है। दिगम्बर और श्वेताम्बर मंदिरों के नाम तो पहले ही लेबल की नीची–सोच के शिकार हो चुके हैं।

स्वतंत्र भारत में जैनों को यदि सामूहिक रूप से स्वाभिमान की रक्षा करना है तो सभी प्रकार के कृत्रिम लेबल/ब्रान्ड साफ करने होंगे और केवल एक लेबल से काम चलाना होगा, वह है **'जैन'**। हम जैन थे, जैन हैं, जैन बने रहें – हो यह भावना। लेबलों के चक्कर में आकर अपने समय, शक्ति, धन और विवेक को नष्ट होने से बचायें। ध्यान रहे –'जैन' जीवित रहेगा तो ही देव, शास्त्र, गुरु जीवित माने जावेंगे। जैन के न रहने पर पारसी या मुसलमान भाई पूजा–पाठ करने नहीं आयेंगे। हमारे सभी प्रतीक – देव, शास्त्र, गुरु, मंदिर, धर्मशाला, औषधालय–आदि संस्थान धूल धूसरित हो जायेंगे। सो जब जैन बचेगा; तभी तो इतिहास बचेगा। तभी धर्म और संस्कृति बचेगी। अतः हमारी भावना है कि सभी महामना पूजनीय साधुगण और उनसे सम्बन्धित हर शहर और तीर्थ की कमेटियां जैनों की रक्षा करें, उन्हें वर्गो–ब्रान्डों में बंटने से बचायें और स्वतः बचे रहें।

(श्री सुरेश जैन 'सरल' एक प्रबुद्ध चिंतक हैं। यद्यपि उनकी ख्याति एक मुनि भक्त के रूप में है, इस लेख में उन्होंने स्पष्ट रूप से स्वतन्त्र चिन्तन किया है। जैन समाज को एक रूप देने के लिए उनके ये विचार चिन्तनीय हैं।

हमने 25–10–2010 को श्री बाहुबलि पाण्ड्या, इन्दौर, को उनके अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन मंदिर महासंघ बनाये जाने के प्रस्ताव के सन्दर्भ में लिखा था कि जहां तक जैंन समाज की एकता का प्रश्न है, उसमें दिगम्बर और श्वेताम्बर को एक साथ लाने की आवश्यकता है। अलग–अलग संस्थाएं बनने से समाज में नेतृत्व की वही स्थिति होगी जो आज देश में राजनीतिक स्तर पर है। नेताओं का एक अलग वर्ग तैयार होगा और चुनावी उठा–पटक में समाज और बिखर जायेगा। समाज को एक करने में हमारे परम पूज्य साधुवर्ग भी उपयोगी पहल कदाचित् नहीं कर सकते। जो स्थिति दिगम्बर आम्नाय के साधु संतों की है वैसी ही स्थिति श्वेताम्बर आम्नाय के साधु–संतों की है। राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में सम्पूर्ण जैन समाज को एक पहचान दिये जाने की आवश्यकता है।

विगत 5 वर्षो में स्थिति में कोई बदलाव नहीं आया है। श्री 'सरल' जी के उपरोक्त विचार यदि सामाजिक स्थिति में बदलाव ला सकेंगे और जैन समाज में एकता की भावना का संचार कर सकेंगे तो मेरी मनः स्थिति के प्रबुद्ध वर्ग को सांत्वना मिलेगी। – डॉ. शशि कान्त)

405, गढ़ा फाटक, जबलपुर

✧✧✧

तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उ0प्र0

प्रतिवेदन वर्ष 2014–15

तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उत्तर प्रदेश, का गठन सन् 1976 ई0 में 24वें तीर्थंकर भगवान वर्धमान महावीर स्वामी का 2500वां निर्वाण महोत्सव वर्ष मनाने के लिए राज्य सरकार द्वारा गठित **श्री महावीर निर्वाण समिति, उ0प्र0**, की उत्तराधिकारी संस्था के रूप में जैन धर्म की सभी आम्नायों के महानुभावों के सहयोग से किया गया था तथा गठन के तुरन्त बाद ही उसे सोसायटी रजिस्ट्रीकरण अधिनियम के अन्तर्गत रजिस्टर्ड करा लिया गया था जिसका नियमानुसार नवीनीकरण यथासमय कराया जाता है।

समिति का वर्ष 2013–14 का प्रतिवेदन **शोधादर्श–79** (जून, 2014) के पृष्ठ 48–52 पर प्रकाशित है। यहां वर्ष 2014–15 (1 अप्रैल, 2014 से 31 मार्च, 2015) का प्रतिवेदन प्रस्तुत है।

आलोच्य वर्ष में समिति की प्रवृत्तियों की प्रगति निम्नवत रही :–

1 तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र शोध पुस्तकालय

पुस्तकालय की स्थापना वर्ष 1976 की श्रुत पंचमी को की गई थी और इसका विधिवत उद्घाटन 23 अक्टूबर, 1976, को प्रदेश के तत्कालीन ग्राम्य विकास मंत्री माननीय डॉ. रामजीलाल सहायक के कर कमलों से सम्पन्न हुआ था। पुस्तकालय और उससे संलग्न वाचनालय श्री मुन्नेलाल कागजी जैन धर्मशाला ट्रस्ट, चारबाग, लखनऊ द्वारा धर्मशाला के प्रथम तल पर उपलब्ध कराये गये एक कक्ष में प्रारंभ किया गया था, जो मई 2001 से धर्मशाला के द्वारा भूतल पर किराये पर उपलब्ध कराये गये दो कक्षों में चल रहा है।

समिति के सदस्यों के अतिरिक्त पुस्तकालय के सदस्य भी हैं जिनकी संख्या इस वर्ष 30 रही। लखनऊ में चारबाग ही नहीं वरन् आसपास की कॉलोनियों के जैन परिवार तथा अनेक जैनेतर जिज्ञासु महानुभाव भी पुस्तकालय के सदस्य हैं। कुछ सदस्य लखनऊ के बाहर के भी हैं।

पुस्तकालय में जैन धर्म, दर्शन, संस्कृति आदि के अध्ययन हेतु जैन धर्म की सभी आम्नायों का साहित्य तथा शोधार्थियों द्वारा तुलनात्मक अध्ययन के लिए अन्य भारतीय धर्मो, दर्शनों एवं संस्कृति से सम्बन्धित महत्वपूर्ण साहित्य संग्रहीत है। अपने विशिष्ट संकलन के लिये इन विषयों के शोधार्थी पाठकों में यह पुस्तकालय विशेष लोकप्रिय है तथा लखनऊ, कानपुर व अन्य विश्वविद्यालयों से सम्बद्ध शोध छात्र इससे लाभ उठाते हैं। सामान्य रुचि के पाठकों के लिए

लौकिक एवं सामान्य ज्ञानवर्धक साहित्य भी पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध है।

वर्ष 2014–15 में पुस्तकालय में 299 पुस्तकों की वृद्धि हुई। राजा राममोहनराय पुस्तकालय प्रतिष्ठान, कोलकाता, से प्रदेश सरकार के शिक्षा विभाग (पुस्तकालय कोष्ठक) के माध्यम से पुस्तक अनुदान के रूप में 279 पुस्तकें प्राप्त हुईं। शेष 20 पुस्तकें भेंट स्वरूप प्राप्त हुईं।

शोध पुस्तकालय के वाचनालय में प्रायः 100 धार्मिक, सामाजिक, सामयिक एवं शोध पत्र–पत्रिकाएं (साप्ताहिक, पाक्षिक, मासिक, त्रैमासिक, चातुर्मासिक, षट्मासिक और वार्षिक) समिति की शोध–पत्रिका **शोधादर्श** के परावर्तन में प्राप्त होती हैं।

पुस्तकालय–वाचनालय से प्रतिदिन प्रायः 50 पाठक लाभ उठाते हैं। पुस्तकालय–वाचनालय का समय प्रातः 10.00 से अपराह्न 2.00 बजे तक है। शनिवार और सार्वजनिक अवकाश पर पुस्तकालय–वाचनालय बन्द रहता है।

पुस्तकालय–वाचनालय का कार्य पूर्ववत पुस्तकालय व्यवस्थापिका श्रीमती हेमा सक्सेना, एम0ए0, द्वारा सुचारु रूप से देखा जाता रहा।

2 शोधादर्श

जैन विद्या की शोध को समर्पित शोध–पत्रिका **'शोधादर्श'** का प्रकाशन फरवरी 1986 में समिति द्वारा प्रथम अंक के प्रकाशन से प्रारंभ किया गया था। इसके आद्य–सम्पादक इतिहास–मनीषी विद्यावारिधि डॉ. ज्योति प्रसाद जैन थे। जून 1988 में उनके स्वर्गवास के उपरान्त अंक 7 से प्रधान सम्पादक के दायित्व का निर्वहन डॉ. शशि कान्त ने किया। अंक 30 (नवम्बर 1996) से अंक 56 तक प्रधान सम्पादक के कार्यभार का सम्पादन श्री अजित प्रसाद जैन ने किया। उनके निधन के उपरान्त अंक 57 (नवम्बर 2005) से अंक 67 (मार्च 2009) तक श्री रमा कान्त जैन ने इसके सम्पादन के दायित्व का निर्वहन किया।

अंक 68 (नवम्बर 2009) से **शोधादर्श** के सम्पादन का दायित्व मेरे द्वारा निर्वहन किया जा रहा है।

जून 2014 और दिसम्बर 2014 में **शोधादर्श** के **क्रमशः** अंक 79 और 80 प्रकाशित हुए। इनमें 160 पृष्ठों की ज्ञानप्रद व उपयोगी संग्रहणीय सामग्री और चित्र प्रकाशित हैं। अंक 80 में जैन स्थापत्य कला पर विशेष लेख प्रकाशित हैं। उपरोक्त विशिष्ट सामग्री के अतिरिक्त पत्रिका के सामान्य स्तम्भ भी सम्मिलित रहे। पत्रिका की लोकप्रियता में उत्तरोत्तर वृद्धि हुई है तथा आज यह पत्रिका देश की उच्च्च स्तरीय धार्मिक–सांस्कृतिक शोध–पत्रिकाओं में अपना विशिष्ट स्थान रखती है।

3 तीर्थंकर छात्र सहायता कोष

इस वर्ष आर्थिक दृष्टि से निर्बल 32 विद्यार्थियों (11 छात्रा और 21 छात्र) को अध्ययन जारी रखने हेतु आंशिक सहायता प्रदान करने पर रु. 33,514/– का व्यय किया गया।

4 लेखे की स्थिति

समिति के लेखे का आडिट इस वर्ष भी श्री आलोक जिन्दल, चार्टर्ड एकाउन्टेन्ट, द्वारा किया गया और उनके माध्यम से आयकर कार्यालय को आवश्यक विवरणी यथासमय प्रस्तुत की जायगी।

शासन से प्राप्त पुस्तक अनुदान तथा कतिपय दातारों से भेंट स्वरूप प्राप्त साहित्य के अतिरिक्त कुल प्राप्तियां वर्ष में रु0 2,20,243.97 रहीं (इसमें रु0 100/– पुस्तकालय सिक्योरिटी राशि भी है जो रिफन्डेबिल है) तथा व्यय रु. 1,27,105.00 हुआ। फिक्स डिपॉज़िट निवेशों में रु. 50,000/– की वृद्धि कर दी गई। प्राप्ति–व्यय की विवरण तालिका संलग्न है। इसमें पुस्तकालय–वाचनालय का मासिक किराया सम्मिलित नहीं है क्योंकि उसका समायोजन श्री मुन्ने लाल कागजी जैन धर्मशाला ट्रस्ट को दी गई अग्रिम धनराशि से होता है।

मुन्नेलाल कागजी जैन धर्मशाला ट्रस्ट को दी गई अग्रिम किराये की अवशेष राशि रु. 1,47,200/– में से वर्ष 2014–15 में रु. 1600/– की दर से रु. 19,200/– की धनराशि मासिक किराये के रूप में समायोजित की गई, और अग्रिम किराये की राशि रु. 1,28,000/– अवशेष रही।

5 अन्य प्रवृत्तियां

वित्तीय वर्ष 2013–14 (असेसमेन्ट वर्ष 2014–15) का इन्कम टैक्स रिटर्न यथासमय जमा कर दिया गया। आयकर विभाग द्वारा आपत्ति के दृष्टिगत प्रकरण का रैक्टीफिकेशन किये जाने की कार्यवाही आडीटर श्री आलोक जिन्दल द्वारा की जा रही है।

रजिस्ट्रार, सोसायटीज, उ0प्र0, लखनऊ, को यथावश्यक सूचना प्रेषित की जाती रही।

6 अन्तिम

विगत वर्ष 2014–15 की सभी प्रवृत्तियों के सम्पादन में मुझे समिति के अध्यक्ष श्री लूणकरण नाहर जैन का तथा प्रबन्ध समिति के सभी माननीय सदस्यों का सक्रिय सहयोग एवं मार्गदर्शन निरंतर उपलब्ध रहा। **शोधादर्श** का सम्पादन डॉ. शशि कान्त के मार्गदर्शन में व्यवस्थित किया जाता रहा।

सभी क्रियाकलापों में समिति के माननीय सदस्यों का सौहार्दपूर्ण सहयोग प्राप्त रहा। इन सभी महानुभावों के प्रति आभार व्यक्त करना मेरा व्यक्तिगत और नैतिक दायित्व है।

नलिन कान्त जैन
महामंत्री

25–6–2015

TIRTHANKAR MAHAVIR SMRITI KENDRA SAMITI, U.P.
Statement of Receipts & Payments for the Year ending 31st March, 2015

RECEIPTS		Rs. P.	PAYMENTS		Rs. P.
Balance b/d:			Research Library:		
F.D.R.s.	22,15,000.00		Salary Libr. Asstt.	49,000.00	
Savings Bank	1,31,892.45		Salary Cleaner	3,040.00	
Cash in Hand	800.00	23,47,692.45	Contingencies	691.00	52,731.00
Research Library:			Shodhadarsh Magazine:		
Security Deposit	100.00		Stationery & Prtg.	26,620.00	
Subscription	820. 00		Dispatch	5,520.00	32,140.00
Misc. Receipts	4,890.00	5,810.00			
Shodhadarsh Magazine:			Stationery		1,386.00
Subscription	1,360.00		Postage		754.00
Donation	930.00	2,290.00	T.C.S. Kosh Scholarship Exp.		33,514.00
—	—		—	-	-
—			—		-
—	4,909.00	2,12,143.97	Balance c/f:		
			F.D.Rs.	22,65,000.00	
			Savings Bank	1,74,896.42	
			Cash in Hand	935.00	24,40,831.42
		25,67,936.42			25,67,936.42

Compiled on the basis of information and explanations furnished.

For Avanish K. Rastogi & Associates
Chartered Accountants
Alok Jindal
Partner

साहित्य सत्कार

डॉ. सागरमल जैन की कृतियां :

1997 से स्थापित प्राच्य विद्यापीठ, दुपाडा रोड, शाजापुर–465001 (फोन नं. 07364–222218) द्वारा इसके संस्थापक, प्रबन्ध–न्यासी एवं निदेशक डॉ. सागरमल जैन के लेखों का वर्गीकृत संकलन के रूप में 2012 से प्रकाशन किया जा रहा है। **प्राकृत का जैन आगम साहित्यः एक विमर्श, प्राकृत एवं संस्कृत साहित्य के विभिन्न वर्गो से सम्बंधित जैन आलेख,** और **भारतीय संस्कृति के मूल तत्त्व** नामक संकलनों का परिचय **शोधादर्श–80** में दिया जा चुका है। नीचे उनके 5 संकलनों का परिचय दिया जा रहा है। इनका प्रकाशन 2014–15 में हुआ।

1 प्राकृत–आगमों एवं प्राकृत के अन्य जैन ग्रन्थों से संबंधित आलेख

इस संकलन में 16 लेख दिये गये हैं। इन लेखों में "उपांग साहित्य की सामाजिक एवं सांस्कृतिक सामग्री" विषयक लेख विशेष महत्व का है। इस साहित्य के प्रणयन के समय छठी–सातवीं शताब्दी ईस्वी में प्रचलित सामाजिक, प्रशासकीय और धार्मिक सम्प्रदायों से सम्बन्धित, एवं गार्हस्थिक परम्पराओं और रीतिरिवाजों की रोचक जानकारी प्राप्त होती है।

2 जैन धर्म एवं साहित्य का संक्षिप्त इतिहास

इसमें दो विभाग हैं। **एक विभाग** जैन धर्म और अन्य भारतीय धार्मिक परम्पराओं का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करता है तथा साथ ही जैन धर्म के स्वरूप में उपस्थित हुये विकास का भी परिचय प्रस्तुत करता है। इसकी पृष्ठ संख्या 103 है। **दूसरे विभाग** में जैन साहित्य का विवेचन है जिसमें प्राकृत और संस्कृत भाषा में रचे गये साहित्य का उल्लेख किया गया है। जैन धर्म और साहित्य के सम्बन्ध में सामान्य ज्ञान प्राप्त करने के लिए यह आलेख उपयोगी है। इस पुस्तक की पृ.सं. 148 है।

3 जैन आचार मीमांसा

लेखक ने अपने स्वकथ्य में कहा है कि "मैंने विभिन्न अवधारणाओं के ऐतिहासिक विकास क्रम को स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है। जैन दर्शन के अन्य ग्रंथों में प्रायः इस दृष्टि का इतनी गम्भीरता से निर्वाह नहीं हुआ।" श्रावक और श्रमण के विभिन्न पक्षों का तुलनात्मक दृष्टि से और जैन दृष्टि से इस पुस्तक में विवेचन किया गया है। इसकी पृ.सं. 279 है।

4 जैन तत्त्व मीमांसा

दर्शन के तीन पक्ष क्रमशः ज्ञान मीमांसा, तत्त्व मीमांसा और आचार मीमांसा होते हैं। इनमें तत्त्व मीमांसा प्रमुख होती है क्योंकि ज्ञान एवं

आचार मीमांसा उस पर आधारित होती है। जैन दर्शन में तत्त्व मीमांसा के मुख्य बिन्दु सत् का स्वरूप, पंच अस्तिकाय की अवधारणा, और षट् द्रव्यों की अवधारणा हैं। अन्य दर्शनों के साथ जैन आत्मवाद का विवेचन इसमें किया गया है। इस पुस्तक की पृ. सं. 144 है।

5 जैन ज्ञान मीमांसा

जैन दर्शन में ज्ञान के दो रूप माने गये हैं – यथार्थ ज्ञान (सम्यग् ज्ञान) और मिथ्या ज्ञान। पुनः इन्हें पांच वर्गों में वर्गीकृत किया गया है – यथा मतिज्ञान, श्रुतिज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान और केवलज्ञान। केवलज्ञान अंतिम लक्ष्य है जिसका आशय है कि सर्वद्रव्यों, सर्वक्षेत्रों, सर्वकालों और सर्वभवों का ज्ञान होना। अनेकांतवाद के सैद्धांतिक और व्यावहारिक पक्ष का विवेचन विशेष रूप से उपयोगी है क्योंकि धार्मिक सहिष्णुता के क्षेत्र में उसका विशेष महत्व है। इस पुस्तक में 176 पृष्ठ है।

डॉ. सागरमल जैन की ये कृतियां जैन धर्म, दर्शन और साहित्य का परिचय प्राप्त करने के लिए उपयोगी हैं। सावधानी यह अपेक्षित है कि उनका विवेचन प्रायः श्वेताम्बर आम्नाय के पक्ष से प्रभावित रहता है। अब 83 वर्ष की वय में भी वे अध्ययन, चिंतन व लेखन में प्रवृत्त हैं। इसके लिए वे अभिनन्दनीय हैं।

करणानुयोग प्रवेशिका (भाग – एक) : ले. पं. श्री किशनचंद जैन 'भाई साहब'; सं. श्री महावीर प्रसाद जैन "स्वतंत्रता सेनानी"; प्र. श्री दिगम्बर जैन साहित्य प्रकाशन समिति, 332, स्कीम नं. 10, अलवर –301001; जनवरी–2015; पृ. 98+33; मूल्य रु. 20/–

दिगम्बर मान्यता के अनुसार वर्तमान जिनागम प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग और द्रव्यानुयोग नामक चार अनुयोगों में विभक्त है। करणानुयोग करण अर्थात् गणित कार्य के कारण रूप सूत्रों का संकलन है। गणना को गणित कहते हैं। लेखक ने प्रश्न–उत्तर की शैली में करणानुयोग के गहन विषय को प्रस्तुत किया है और उसे 14 अध्यायों में वर्गीकृत किया है।

भूमिका में ग्रन्थ कर्ता का परिचय दिया गया है और उसके बाद करणानुयोग में प्रस्तुत विषय का परिचय दिया गया है। यह परिचय श्री अरुण कुमार जैन, प्राचार्य, राजकीय संस्कृत महाविद्यालय, ने प्रस्तुत किया है। लेखक ने स्वयं भी अपने "दो शब्द" में प्रस्तुत विषय की परिचयात्मक विवेचना की है ताकि पाठक की जिज्ञासा इस गहन विषय के प्रति जागरूक हो। प्रत्येक अध्याय के साथ एक अभ्यास माला भी दी गई है।

संस्कार–सुमन : सं. श्री सुरेन्द्र कुमार जैन; प्र. डॉ. महेन्द्र कुमार जैन अध्ययन केन्द्र, भगवां (जिला छतरपुर)–411313; 2015; पृ. सं. 44+8

'अपनी बात' में श्री सुरेन्द्र कुमार जैन ने इस आवश्यकता को रेखांकित किया है कि बालक के शारीरिक, बौद्धिक और चारित्रिक सर्वांगीण विकास के लिए शैशवकाल से ही अच्छे संस्कार डाला जाना आवश्यक है ताकि चरित्र की नींव पुख्ता हो। अन्य विचारक लेखकों का भी उल्लेख किया है जिन्होंने संस्कार पोषण के सूत्र बताये । लगभग 30 विषयों पर जीवन को सुखी और सफल बनाने के सूत्र दिये गये हैं। इनमें श्रम का महत्व और विनम्रता तथा शिष्टाचार विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

धर्ममंगल : सं. श्रीमती लीलावती कांतीलाल जैन, 1, सलिल अपार्टमेंट, प्लॉट नं. 57, सानेवाड़ी, औंध, पुणे–411007

धर्ममंगल मासिक के 3 विशेष अंक क्रमशः मई 2014, अक्टूबर 2014 और मई 2015 में प्रकाशित हुये। उपरोक्त में प्रथम में 'जैनेन्द्र सिद्धांत कोष' के रचयिता तथा सम्पादक श्री जिनेन्द्र वर्णी द्वारा **कर्म सिद्धांत** पर लिखी गयी पुस्तक को पुनः प्रकाशित किया गया है। सम्पादिका ने अपनी भूमिका में इस विषय की चर्चा की है कि कर्म सिद्धांत मानव के आचरण की कार्यकारण परम्परा की मीमांसा करता है। अतः यह मानव के आचरण का अध्ययन करने के लिए उपयोगी है। विषय का विवेचन लेखक द्वारा 16 अध्यायों में किया गया है, जो विषय को समझने में उपयोगी है।

अक्टूबर 2014 के विशेषांक में संपादिका द्वारा श्री वीर सागर जी महाराज के प्रवचनों से संकलित **सार्थ भक्ताम्मर** का हिन्दी अनुवाद प्रस्तुत किया गया है। संपादिका ने मंत्र–तंत्र की मिथ्या प्रवृत्तियों से अपने आपको और समाज को बचाये रखने का भी संदेश दिया है।

मई 2015 में श्री जिनेन्द्र वर्णी द्वारा लिखित **कर्म रहस्य** का पुनः प्रकाशन किया गया है। इस पुस्तक में विषय की दो खण्डों – अध्यात्म खण्ड और कर्म खण्ड – में विवेचना की गई है। अध्यात्मखण्ड में 14 विषयों के अंतर्गत और कर्मखण्ड में 18 विषयों के अंतर्गत यह विवेचना है। मन, बुद्धि तथा हृदय का विकास अध्यात्म का सार है और इसी को अध्यात्म खण्ड में स्पष्ट किया गया है। जहां अध्यात्म केवल अनुभवगम्य अत्यंत स्थूल बातों का विवेचन करता है वहीं कर्म शास्त्र उन स्थूल तथ्यों के भीतर दुष्कर्म और उसकी सूक्ष्म व अति सूक्ष्म संधियों को पकड़ता है।

उपरोक्त तीन विशेषांकों में **धर्ममंगल** द्वारा उपयोगी ग्रन्थों का प्रकाशन किया गया है जिसके लिए उन्हें साधुवाद!

चिन्तन के आयाम : ले. डॉ. धर्मचन्द जैन; प्र. सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल, दुकान नं. 182—183 के ऊपर, बापू बाजार, जयपुर—302003; 2015; पृ.सं. 168+8; मूल्य रु.40/—

जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर, में डॉ. धर्मचन्द जैन संस्कृत विभाग में प्रोफेसर हैं और विगत 20 वर्षो से **जिनवाणी** मासिक पत्रिका का सम्पादन भी कर रहे हैं। इस पुस्तक में **जिनवाणी** में सम्पादकीय के रूप में लिखे गये 35 लेखों का संकलन है। लेखों के विषय विविध हैं। परन्तु वे सभी जीवन सूत्र से बंधे हुये हैं। लेखक ने अपनी 'लेखकीय' में यह स्पष्ट किया है कि इन लेखों में उन्होंने जीवन के सत्य को एक जिज्ञासु के रूप में जानने का प्रयत्न किया है। जैन सिद्धांत की पृष्ठभूमि में और व्यावहारिक जीवन की आवश्यकताओं की दृष्टि से प्रस्तुत विषयों का विवेचन किया गया है। पाठक में इस विवेचन को पढ़कर स्वयं भी जिज्ञासा जागृत होगी। लेखक से मो.नं. 09413253084 पर सम्पर्क किया जा सकता है।

मध्यांतर : ले. पं. राजकुमार शास्त्री; प्र. समर्पण चेरिटेबुल ट्रस्ट, 18, आदिनाथ कॉलोनी, केशव नगर, उदयपुर; 22—2—2015; पृ.सं. 112; मूल्य रु. 20/—

पं. राजकुमार शास्त्री ने एक कहानी के माध्यम से जैन धर्म के व्यवहार में आने योग्य सिद्धांतों और पूजा पद्धति की प्रस्तुति की है। उनका चिन्तन कांजी स्वामी की शिक्षाओं से प्रभावित है। प्रकारान्तर से इस कहानी के माध्यम से उन्होंने यह भी इंगित किया है कि वे 50 वर्ष की वय प्राप्त कर चुके हैं और 25 वर्ष शिक्षक के रूप में कार्य कर चुके हैं। बीच—बीच में भावपूर्ण कविताओं के अंश दिये गये हैं। अंत में इनकी स्वयं रची हुई कविताएं — 'क्या मैं असफल हूं'? और 'सोचता हूं — में लेखक के व्यक्तित्व, व्यक्तिगत चिन्तन और आध्यात्मिक सोच का परिचय मिलता है।

जैन संस्कृति—सौरभ : सं. डॉ. श्रीमती राका जैन; प्र. श्री पुष्प वर्षायोग समिति, श्री विमल भरत निलय अतिशय क्षेत्र, सरावगी मोहल्ला, बाराबंकी; 2014; पृ.सं. 250+चित्र; मूल्य रु. 100/—

दिनांक 13 और 14 सितम्बर 2014 को मुनि श्री सौरभ सागर के बाराबंकी में वर्षायोग पर 'जैन संस्कृति के विविध—आयाम' विषय पर संगोष्ठी का आयोजन किया गया। संगोष्ठी चार सत्रों में सम्पन्न हुई।

24 विषयों पर विभिन्न विद्वानों द्वारा जो आलेख प्रस्तुत किये गये उनको इसमें संकलित किया गया है। इस संगोष्ठी के निदेशक प्रोफेसर विजय कुमार जैन थे। आज के राष्ट्रीय परिवेश में डॉ. ज्योति जैन का 'भारतीय /जैन संस्कृति में योग' विषय पर आलेख विशेष रूप से मननीय है। इस अवसर पर डॉ. दयाचन्द जैन की अहिंसक आहार पर एक लघु पुस्तिका भी प्रकाशित की गई थी, जिसका यद्यपि परिशिष्ट के रूप में विषय सूची में उल्लेख है परन्तु वह परिशिष्ट के रूप में इसमें सम्मिलित नहीं है।

हिन्दी जैन व्रत–कथा साहित्य : डॉ. पदम कुमार जैन; प्र. हर्षित प्रकाशन, 10–11, अणुव्रत विहार, सभापुर, दिल्ली–110094; 2015; पृ. सं. 504; मूल्य रु. 800/–

डॉ. पदम कुमार जैन शिक्षा निदेशालय दिल्ली सरकार के अधीन हिन्दी के प्रवक्ता रहे और श्रेष्ठ हिन्दी शिक्षक के रूप में सम्मानित किये गये। प्रस्तुत ग्रन्थ लेखक का शोध ग्रन्थ है। अपने विषय को उन्होंने सात अध्यायों में प्रस्तुत किया है। अपनी प्रस्तावना में उन्होंने प्रस्तुत विषय का संक्षिप्त परिचय दिया है। व्रत कथायें मूल रूप में लोक कथायें हैं। लेखक ने हिन्दी जैन व्रत–कथा साहित्य का समीक्षात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया है जिसमें जैन कथाओं का भारत के जैनेतर साहित्य और विश्व के कथा साहित्य के संदर्भ से तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। यह श्रम–साध्य कार्य लेखक ने प्रोफेसर डॉ. विद्यावती जैन के निर्देशन में सम्पन्न किया था। मगध विश्वविद्यालय, बोध गया, से उन्हें पी–एच.डी. की उपाधि प्रदान की गई थी। शोध–प्रबन्ध 1991 में सम्पन्न हो गया था परन्तु उसके उपरांत भी लेखक इस विषय पर शोधकार्य करते रहे जिसकी परिणति प्रस्तुत पुस्तक के रूप में हुई।

मैं ज्ञानानंदस्वाभावी हूं एक अनुशीलन : ले. डॉ. हुकमचंद भारिल्ल; प्र. पं. टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, ए–4, बापू नगर, जयपुर–302015; 11–5–2015; पृ.सं. 48; मूल्य रु. 5/–

"मैं ज्ञानानंदस्वाभावी हूं" एक चार–पदीय गीत है। इस गीत को डॉ. हुकमचंद भारिल्ल ने **समयसार** के आधार से स्वयं लिखा है। इसके चारों पदों की व्याख्या डॉ. भारिल्ल ने इस पुस्तक में दी है। यह गीत आत्मानुभूति के परमतत्व को व्याख्यायित करता है। अंत में डॉ. भारिल्ल द्वारा रचित 'महावीर वन्दना' भी इस पुस्तक के आंतरिक कवर पर दी गई है।

ब्र. यशपाल जैन की कृतियां :

गुणस्थान विवेचन का तेरहवां संस्करण 15 अगस्त 2012 को और **जीव जागा – कर्म भागा** का द्वितीय संस्करण 22 मई 2015 को पं. टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, ए–4, बापूनगर, जयपरु – 302015 से प्रकाशित हुये हैं।

गुणस्थान विवेचन : इसमें 280 पृष्ठों में करणानुयोग के महत्वपूर्ण विषय गुणस्थान की विवेचना की गई है। यह विवेचना सम्यग्ज्ञान चन्द्रिका की पीठिका, महत्वपूर्ण प्रश्नोत्तर, एवं गुणस्थान विवेचन, शीर्षक तीन अध्यायों में की गई है। **धवला** से भी इस विषय के उद्धरण दिये गये हैं। इसका सम्पादन पं. रतनचंद भारिल्ल ने किया है।

जीव जागा – कर्म भागा : कर्म की विशिष्ट दस अवस्थाओं को करणानुयोग में 'दस करण' कहा गया है। इन्हीं दस करणों की प्रश्नोत्तर शैली में 208 पृष्ठों में चर्चा की गई है। इसका सम्पादन डॉ. अरुण कुमार जैन और डॉ. संजीव कुमार गोधा ने किया है।

ये हैं अबोध के नवीन छन्द : ले. श्री दयानन्द जड़िया 'अबोध'; प्र. त्रिमूर्ति प्रकाशन, लखनऊ; 2014; पृ.सं. 48; मूल्य रु. 100/–

श्री 'अबोध' मौलिक रचनाकार हैं। उन्होंने हिन्दी कविता के लिए नवीन छन्दों की रचना की है। जो नवीन छन्द इस पुस्तक में संकलित हैं वे सभी विभिन्न पत्र–पत्रिकाओं में 2014 तक प्रकाशित हो चुके हैं। इस छन्द संग्रह में 51 रचनाएं संकलित हैं और उन रचनाओं को उन्होंने अपने द्वारा संस्कारित छन्दों में निबद्ध किया है। छन्द रचना की जिस नूतन विधा का सृजन किया गया है वह अभिनन्दनीय है। काव्य शास्त्र में यह विधा नवीन उपलब्धि मानी जायेगी। शब्द विन्यास सरल है, प्रस्तुत भाव सहज हैं। संगम छन्द में निबद्ध सन्देश वर्तमान राष्ट्रीय परिवेश में समयोचित है – आज जरूरत देश को, बचा रहे गणतन्त्र।

संविधान की देन को समझें पावन मंत्र।।
समझें पावन मंत्र, बचा कर वंशवाद से।
रहे 'अबोध' स्वतन्त्र, बच सामन्तवाद से।।

आत्म जीवन परिचय : ले. श्री मगन लाल जैन, 4/153, विशेष खण्ड, गोमती नगर, लखनऊ–226010

श्री मगन लाल जैन ने 15 फरवरी को 80 बसंत पार करने पर अपना **आत्म जीवन परिचय** प्रकाशित किया है। इनका जन्म इलाहाबाद

में बादशाही मण्डी के एक मकान में हुआ था। इनका जीवन संघर्षमय रहा। 1958 में स्टेट बोर्ड आफ टेक्निकल एजूकेशन के गठन के बाद वे उसमें सेवारत रहे और उनका कार्यक्षेत्र लखनऊ रहा। इन्दिरा नगर में और गोमती नगर में दिगम्बर जैन मंदिर का निर्माण इनके संयोजन में सम्पन्न हुआ। यद्यपि 21 जनवरी 2006 को इनकी पत्नी का देहान्त हो गया तो भी वे अगस्त में लन्दन में श्री महावीर स्वामी जैन मंदिर के प्रतिष्ठा महोत्सव में भाग लेने के लिए 1 अगस्त को लन्दन की यात्रा पर चले गये। अपने विभिन्न धार्मिक एवं सामाजिक कार्यो का, अपने परिवार के सभी सदस्यों का और सम्पर्क में आये सभी महानुभावों का उन्होंने अपने **आत्म जीवन परिचय** में विवरण दिया है और उनका स्मरण किया है। शैली में निजत्व की भावना है। धार्मिक कार्यो के प्रति उनका उत्साह अभिनन्दनीय है। यद्यपि वह शारीरिक रूप से प्रायः अस्वस्थ हैं तथापि 80 वर्ष की वय में भी उनकी कुछ–न–कुछ करते रहने की इच्छा शक्ति स्पृहणीय है। हमारी भावना है कि वे इसी प्रकार उत्साह से पूर्ण रहकर अपने पारमार्थिक कार्यो में प्रवृत्त रहें।

भगवान महावीर का बुनियादी चिन्तन : ले. डॉ. जयकुमार जलज; प्र. हिन्दी ग्रन्थ कार्यालय, 9, हीराबाग सी.पी. टैंक, मुम्बई–400004; 40वां संस्करण 2015; पृ. 24; मूल्य रु. 34/–

डॉ. जयकुमार जलज का जन्म 2 अक्टूबर 1934 को हुआ था। वे शिक्षण से जुडे रहे और 1994 में शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय रतलाम से प्राचार्य के पद से सेवा–निवृत्त हुये। सेवा–निवृत्ति के बाद वे लेखन में प्रवृत्त रहे। संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश और ब्रज भाषा में उपलब्ध ग्रन्थों का अनुवाद भी किया है। प्रस्तुत कृति **भगवान महावीर का बुनियादी चिन्तन** 2002 में प्रकाशित हुई थी और अब तक इसके 40 संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं। इसके अंग्रेजी, गुजराती, उर्दू, मराठी, कन्नड़, तेलगू, सिन्धी, पंजाबी और बंगला भाषा में अनुवाद भी प्रकाशित हो चुके हैं।

भगवान महावीर के जीवन वृत्त और उनकी शिक्षाओं को सार रूप में इसमें प्रस्तुत किया गया है। महावीर के चिन्तन के स्याद्वाद् सिद्धांत को सापेक्षता के भाव से स्पष्ट किया गया है।

लेखक ने बताया है कि महावीर हर किस्म के भेदभाव, आडम्बर और कर्मकाण्ड का विरोध करते हैं। आज की दुनिया में जो झूठ और फरेब

का वातावरण दिखाई पड़ता है महावीर की अनेकांत और अहिंसा की शिक्षा उसका निवारण करने में विशेष रूप से सहायक होगी। लेखक का मानना है कि भगवान महावीर के मार्ग पर चलने की और उन्हीं की तरह मुक्त होने की कोशिश निरंतर की जानी चाहिए ताकि मनुष्य और पृथ्वी को अशांति से बचाये रखा जा सके – बहरी दिशाएं हैं, शब्द घुटे जाते हैं

कौन हवा चलती है, सब लुटे जाते हैं
खुली इस हथेली पर, एक रतन और
रौशनी उगाने का एक जतन और
अभी एक जतन और।

आचार्य विद्यानंद मुनि की कृतियां :

कल्याण मुनि और सम्राट सिकन्दर : कुन्द–कुन्द भारती न्यास, 18 बी, स्पेशल इन्स्टीट्यूशनल एरिया, नई दिल्ली–110067 से 2014 में इस 48–पृष्ठीय पुस्तक का 7वां संस्करण प्रकाशित किया गया। जैन धर्म की प्राचीनता और मुनि के दिगम्बर वेश की शाश्वतता से सम्बन्धित भगवान ऋषभनाथ का मोहनजोदड़ों से प्राप्त पुरातत्व, गौतमबुद्ध और महावीर के सम्बन्ध में तथा महावीर के पश्चात् के चन्द्रगुप्त आदि के उल्लेख करने के बाद भारत पर सिकन्दर के आक्रमण और सिकन्दर की कल्याण मुनि से भेंट की चर्चा इस पुस्तिका में की गई है। जैन धर्म के और उसके दिगम्बर श्रमणरूप के विश्व में प्राचीन काल में प्रसार के सम्बन्ध में जानकारी के लिए इस पुस्तिका में रुचिकर सामग्री संकलित है।

वन का पति वनस्पति : इसका प्रकाशन भी कुन्द–कुन्द भारती न्यास द्वारा किया गया है। प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव ने कृषि की शिक्षा दी थी। सभी तीर्थंकरों को केवलज्ञान भी किसी वृक्ष के नीचे ही प्राप्त हुआ है। अतः वनस्पति का जैन धर्म की चर्या में विशेष स्थान है। पर्यावरण में वनस्पति का और वृक्षों को बनाये रखने की आवश्यकता का विशेष महत्व निरंतर प्रचारित किया जाता है। वनस्पति के विविध उपयोगों का उल्लेख इस पुस्तिका में किया गया है। धार्मिक दृष्टि से वनस्पति के महत्व को जानने के लिए यह पुस्तिका उपयोगी है।

डॉ0 प्रभाकिरण जैन की कृतियां :

वैशाली के महावीर : इसमें भगवान महावीर की जीवनी और उनकी शिक्षायें बच्चों के लिए आसान पद्यावली में प्रस्तुत की गई हैं। सभी

पृष्ठों पर चित्र भी दिये गये हैं जो पद्य की भावना को चित्रित करते हैं। यह 40 पृष्ठों की पुस्तिका है, और इसका प्रकाशन भारतीय ज्ञानपीठ, 18, इन्स्टीट्यूशनल एरिया, लोधी रोड, नई दिल्ली—110003, द्वारा 2014 में किया गया। इसका मूल्य रु. 60/— है।

Mahavira of Vaishali : डॉ. प्रभाकरण जैन के उपरोक्त हिन्दी बाल—काव्य का अंग्रेजी भाषा में श्री अमरेन्द्र खतवा द्वारा पद्यबद्ध अनुवाद किया गया है। यह उसी प्रकार चित्रित है जैसे कि हिन्दी संस्करण। इसका प्रकाशन भी भारतीय ज्ञानपीठ द्वारा 2014 में ही किया गया।

मनोनयन : हेमवती नन्दन बहुगुणा गढ़वाल विश्वविद्यालय, श्री नगर, द्वरा डी.फिल. की उपाधि के लिए यह शोध—प्रबन्ध स्वीकृत किया गया था। इसका प्रकाशन भारतीय ज्ञानपीठ द्वारा 2013 में किया गया। पृ. सं. 114 है और मूल्य रु. 180/—।

यह शोध एक लौकिक विषय पर है। मनोनयन नाम से कुछ भ्रम होता है, तदपि इसका अर्थ नामांकन अथवा नाम—निर्देशन कर देने से इसकी विषय—वस्तु स्पष्ट हो जाती है। भारत के संविधान के अनुच्छेद 80 में यह प्राविधान है कि साहित्य, विज्ञान, कला और समाज—सेवा के सम्बन्ध में जिन्हें विशेष ज्ञान या व्यावहारिक अनुभव है ऐसे 12 सदस्यों को राष्ट्रपति राज्यसभा के सदस्य के रूप में नाम निर्देशित करें। उसी के आधार से जिन महानुभावों को राज्यसभा का सदस्य 1952 से 2012 तक मनोनीत किया गया है उनके सम्बन्ध में परिचयात्मक विवरण और संसदीय प्रक्रिया में उनकी भागीदारी की समीक्षा इस शोध—प्रबन्ध में की गई है। 1952 से 2012 तक की अवधि में 123 महानुभावों का नामांकन किया गया है। इस प्रकार मनोनीत सदस्यों की सदस्यता की अवधि सामान्यतः 6 वर्ष होती है परन्तु विवरण देखने से विदित होता है कि प्रारंभ में कुछ सदस्यों का कार्यकाल कम अवधि के लिए रहा और ऐसे भी सदस्य रहे जिनका कार्यकाल 12 वर्ष रहा, अर्थात् उनकी सदस्यता दो कार्य—अवधि के लिए रही।

मनोनीत सदस्यों द्वारा संसदीय कार्य में दिये गये योगदान का आकलन उनके द्वारा संसद में प्रस्तुत प्रस्तावों और अभिभाषणों के आधार से किया गया है। यह अध्ययन संसदीय कार्य प्रणाली को समझने के लिए भी उपयोगी है। इस श्रम साध्य शोध के लिए लेखिका धन्यवाद की पात्र हैं।

विवरण को देखने से विदित होता है कि इस वर्ष 2015 में पत्रकार श्री एच.के.दुआ और सामाजिक कार्यकर्ता डॉ. अशोक एस. गांगुली का

कार्यकाल समाप्त हो रहा है, परन्तु अभी किसी सदस्य के नामांकन का सम्वाद नहीं मिला है।

लखनऊ के **श्री भगवती चरण वर्मा** का क्रमांक 53 पर उल्लेख है। साहित्यकार के रूप में उनकी ख्याति थी और 1978 से 1981 तक (मृत्युपर्यन्त) वे राज्यसभा के सदस्य रहे थे। उन्होंने अपने इस मनोनयन के सम्बन्ध में **धुप्पल में** मनोरंजक विवरण प्रस्तुत किया है।

सर्वार्थसिद्धि परिशीलन : सं. प्रो. विजय कुमार जैन; प्र. भगवान ऋषभदेव ग्रन्थमाला, श्री दिगगम्बर जैन मंदिर संघी जी, सांगानेर, जयपुर/आचार्य ज्ञान सागर वागर्थ विमर्श केन्द्र, ब्यावर; वर्ष 2014; पृ.सं. 554; मूल्य रु. 300/–

दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र आलनपुर, सवाईमाधोपुर, में **तत्त्वार्थसूत्र** की वृत्ति **सर्वार्थसिद्धि** पर एक गोष्ठी का संयोजन 26 से 28 सितम्बर 2009 को किया गया था। इसके संयोजक प्रो. वृषभ प्रसाद जैन और प्राचार्य अरुण कुमार जैन थे। सम्पादन का दायित्व प्रो. विजय कुमार जैन और उनकी सहधर्मिणी डॉ. राका जैन पर रहा। संगोष्ठी में विद्वानों द्वारा 50 शोध पत्र प्रस्तुत किये गये। उन शोध पत्रों का समाकलन इस ग्रन्थ में किया गया है।

आचार्य पूज्यपाद देवनन्दी द्वारा **तत्त्वार्थसूत्र** पर लिखी गई वृत्ति का नाम **सर्वार्थसिद्धि** है। जैन दर्शन के विविध पक्षों को इस वृत्ति में व्याख्यायित किया गया है। इस ग्रन्थ में संकलित शोध लेखों में इन विषयों की विद्वान लेखकों द्वारा इस प्रकार विवेचना की गई है कि सामान्य पाठक भी उनको समझ सके।

प्रतिष्ठा प्रज्ञ : प्रधान सं. पं. निहाल चंद जैन, सं. डॉ. अरिहंत जैन; प्र. प्रतिष्ठाचार्य पं. श्री विमल कुमार जैन सोंरया अभिनंदन ग्रन्थ प्रकाशन समिति, भोपाल; फरवरी 2015; पृ.सं. 564; मूल्य रु. 501/–

प्रतिष्ठाचार्य पं. विमल कुमार जैन सोंरया के 75 वर्ष की वय 12 अगस्त 2014 को प्राप्त कर लेने पर उनके सुपुत्र डॉ. अरिहंत जैन ने अभिनंदन ग्रन्थ प्रकाशित करने का विचार किया। यह एक श्रम साध्य आयोजन था परन्तु डॉ. अरिहंत शरण जैन ने जैन समाज के सभी विद्वत्जनों के सहयोग और विशेष रूप से प्राचार्य पं. निहाल चंद जैन के सहयोग से अपने पिताजी के सम्मान में **प्रतिष्ठा प्रज्ञ** नाम से इस

अभिनंदन ग्रन्थ को प्रकाशित करने के अपने संकल्प को पूरा किया। इस ग्रन्थ का लोकार्पण 1 मार्च 2015 को बुन्देलखण्ड स्थित सिद्ध क्षेत्र, मदनपुर (ललितपुर), पर आयोजित पंच कल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव के शुभावसर पर ज्ञान कल्याणक के दिन सम्पन्न हुआ।

इस ग्रन्थ में प्रथम खण्ड में महाव्रती एवं पूज्य जनों के आशीर्वाद, विद्वानों, साहित्यकारों एवं विशिष्ट महापुरुषों के शुभ कामना संदेश (जिनमें पृष्ठ 62 पर हमारा सन्देश भी सम्मिलित है), साहित्यकारों द्वारा व्यक्तित्व समीक्षा, स्नेहीजनों एवं सम्बन्धियों के संस्मरण तथा महाकवियों एवं गीतकारों की काव्यांजलि संकलित हैं। द्वितीय खण्ड में श्री सोंरया जी की जीवन गाथा श्री सुरेश जैन 'सरल' और पं. लालचन्द जैन 'राकेश' द्वारा प्रस्तुत है। तृतीय खण्ड में पं. सोंरया जी के 10 विशिष्ट शोध आलेख और 29 सम्पादकीय आलेख संकलित हैं। चतुर्थ खण्ड में विद्वानों के जीवनोपयोगी एवं लोक–कल्याणी आलेखों का समुच्चय है और पंचम खण्ड में परिशिष्ट स्वरूप सोंरया जी को प्रदत्त मान–पत्रों का संचय है।

यह अभिनंदन ग्रन्थ बहुत श्रम साध्य रहा। इसके संयोजक और संपादकों को हमारा साधुवाद और पं. विमल कुमार सोंरया जी को हमारी भावांजलि निवेदित है।

— डॉ. शशि कान्त

✧✧✧

आभार

श्री नरेन्द्र कुमार जैन एवं उनके भाईयों ने अपने पिता **श्री प्रकाशचंद्र जैन 'दास'** की प्रथम पुण्यतिथि पर उनकी स्मृति में रु. 2100/– भेंट किये।

सान्ध्य महालक्ष्मी के सम्पादक–प्रकाशक **श्री श्रीकिशोर जैन,** दिल्ली, ने नूतन गृह प्रवेश पर रु. 1000/– भेट किये।

श्री मगनलाल जैन ने अपनी 80वीं जन्म जयंती पर रु. 500/–भेंट किये।

डॉ. (श्रीमती) उषा जैन, बिजनौर, ने रु. 200/– भेंट किये।

श्री कैलाश नारायण टण्डन, कानपुर, ने अपनी पत्नी **श्रीमती शकुन्तला टण्डन** की पुनीत स्मृति में रु. 50/– भेंट किये।

— सम्पादक

अभिनन्दन

25 जनवरी 2015 को श्रुतसेवा निधि न्यास द्वारा फिरोजाबाद में आयोजित अक्षराभिषेकोत्सव कार्यक्रम में दिल्ली के **प्रोफेसर वीर सागर जैन** को "मुनि ब्रह्म गुलाल" अलंकरण से विभूषित किया गया और **श्री प्रमोद कुमार गर्ग** को 'उद्योग रत्न' एवं **श्री राहुल जैन** को 'समाज रत्न' की उपाधि से सम्मानित किया गया।

66वें गणतंत्र दिवस पर 26 जनवरी को **डॉ. विरेन्द्र हेगड़े**, धर्मस्थल कर्नाटक के धर्माधिकारी, को 'पदम विभूषण' से अलंकृत किया गया। संगीतकार **श्री रवीन्द्र जैन**, फिल्मकार **श्री संजय लीला भंसाली**, भगवान महावीर विकलांग समिति जयपुर के संयोजक **श्री वीरेन्द्र राज मेहता**, और दिल्ली के **श्री राहुल जैन** को 'पद्मश्री' के सम्मान से सम्मानित किया गया। राजस्थान प्रदेश सरकार के मुख्य सचिव तथा अन्त्योदय योजनाकार के प्रमुख के रूप में ख्याति प्राप्त **श्री मिठालाल मेहता** को भी मरणोपरान्त 'पद्मश्री' सम्मान से सम्मानित किया।

गणतंत्र दिवस पर आई.सी.जी. इन्स्टीट्यूट आफ एजूकेशनल रिसर्च एण्ड डेवलपमेंट की अध्यापिका **डॉ. श्रीमती अर्चना रांवका जैन** को सर्वश्रेष्ठ प्राध्यापिका के रूप में पुरस्कृत और सम्मानित किया गया।

जैन विश्व भारती संस्थान, लाडनूं, की कुलपति **समणी चारित्र प्रज्ञा** को नई दिल्ली में इण्डिया इण्टरनेशनल सेन्टर में आयोजित अन्तर्राष्ट्रीय विश्व मानव एकता दिवस के उपलक्ष में 'लाईफ टाईम एचीवमेंट अवार्ड' से सम्मानित किया गया।

भगवान महावीर फाउण्डेशन, चेन्नई, द्वारा 14 फरवरी को अहिंसा व शाकाहार के क्षेत्र में **ब्लू कास ऑफ इण्डिया** को, शिक्षा के क्षेत्र में **श्री शारदा आश्रम**, उलूंदूरपेट, तमिलनाडु को, चिकित्सा के क्षेत्र में **डॉ. सुनील सेनोन**, मसूरी को, और सामाजिक उत्थान व सेवा के क्षेत्र में **श्रीमती फूलबसनबाई यादव**, राजनंदगांव, को अपने उल्लेखनीय योगदान के लिए पुरस्कार से सम्मानित किया गया।

17 फरवरी को दिगम्बर जैन त्रिलोक पीठ, बड़ागांव, के प्रांगण में उत्तर प्रदेश के राज्यपाल श्री राम नाईक द्वारा **डॉ. अनुपम जैन** को भारतीय गणित के क्षेत्र में मौलिक अनुसंधान के लिए 'गणिताचार्य' की उपाधि से सम्मानित किया गया।

24 फरवरी को गाजियाबाद में श्री ऋषभांचल ध्यान योग केन्द्र में 19वें 'ऋषभदेव पुरस्कार' से इन्दौर निवासी **डॉ. गोकुलचन्द्र जैन** को सम्मानित किया गया, और नागपुर के **डॉ. राजेन्द्र पटोरिया** को 'ऋषभांचल पुरस्कार', दिल्ली के **श्री विजय कुमार जैन** व **श्री आर.के. जैन** को 'धर्म संवर्धन पुरस्कार' तथा गाजियाबाद की **कु. अंशिका जैन** एवं पानीपत की **कु. वैशाली जैन** को 'मातृ छाया पुरस्कार' से सम्मानित किया गया। इस अवसर पर राज्यपाल श्री राम नाईक ने समारोह को गौरवान्वित किया।

1 मार्च को श्री दिगम्बर जैन सिद्धक्षेत्र मदनपुर (ललितपुर) में सम्पन्न पंच कल्याणक महोत्सव के अवसर पर **पं. लालचन्द्र जैन 'राकेश'** को क्षेत्र की प्रबन्ध कारिणी समिति द्वारा "विद्या वाचस्पति" एवं प्रतिष्ठा प्रज्ञ अभिनन्दन ग्रन्थ प्रकाशन समिति द्वारा 'विद्वत् गौरव" की उपाधि से सम्मानित किया गया।

वीर सेवा मंदिर, नई दिल्ली, के निदेशक **पं. निहालचंद जैन** (सेवानिवृत्त प्राचार्य) को 8 मार्च को अहिंसा इण्टरनेशलन द्वारा 'श्री जिनेन्द्रवर्णी जैन धर्मप्रचार–प्रसार पुरस्कार' प्रदान किया गया और पुनः 3 अप्रैल को फिरोजाबाद में 'श्री श्यामसुंदर लाल शास्त्री श्रुत प्रभावक न्यास–रइधु पुरस्कार – वर्ष 2015' प्रदान किया गया।

अहिंसा इण्टरनेशनल द्वारा ही **डॉ. सुरेन्द्र कुमार जैन 'भारती'** को जैन पत्रिकारिता में उल्लेखनीय योगदान के लिए सम्मानित किया गया। **श्री चन्द्र प्रकाश जैन** (बीना), **डॉ. श्रेयांस कुमार जैन** (बड़ौत), **श्री मुजफ्फर हुसैन** (नई दिल्ली), **श्री प्रदीप जैन** (जैन प्रचारक), **श्री सतीश जैन** (आकाशवाणी) और **मास्टर गौरव कुमार** (दिल्ली) को भी पुरस्कार से सम्मानित किया गया।

8 मार्च को विश्वमहिला दिवस पर **डॉ. (श्रीमती) नीलम जैन** को नवभारत समाचार पत्र समूह द्वारा 'स्त्री शक्ति पुरस्कार 2015' से पुणे में सम्मानित किया गया। वह महाराष्ट्र के राष्ट्रीय अल्पसंख्यक शिक्षण आयोग की प्रदेश समन्वयक भी हैं।

ठाणें में शहीद दिवस दिनांक 23 मार्च को गडकरी रंगायतन में आयोजित श्रद्धांजलि सभा में **दाल–रोटी** के संपादक सुप्रसिद्ध जन कवि **श्री अक्षय जैन** को सम्मानित किया गया।

साहित्य–वाचस्पति महोपाध्याय **विनयसागर जी** को 23 मार्च को पॉलि/प्राकृत में निपुणता तथा शास्त्र में पांडित्य के लिए 'राष्ट्रपति सम्मान प्रमाणपत्र' व पुरस्कार से सम्मानित किया गया। पुरस्कार प्राप्त करने के

पूर्व ही 30 नवम्बर 2014 को उनका देहावसान हो गया था। विनयसागर जी का जन्म 1 जुलाई 1929 को चेन्नई में हुआ था। प्राकृत, संस्कृत, अपभ्रंश, गुजराती और राजस्थानी भाषाओं पर उनका पूर्ण अधिकार था। प्राकृत भारती अकादमी, जयपुर, को स्थापना काल 1977 से उन्होंने अपनी अमूल्य सेवाएं सम्मान्य निदेशक के रूप में आजीवन प्रदान की थीं।

29 मार्च को **श्री पवन कुमार जैन, डॉ. वंदना मेहता** और **श्री नरेश पाठक** को जैन इतिहास एवं पुरातत्व पर शोध के लिए ज्ञानोदय फाउण्डेशन, इन्दौर, द्वारा पुरस्कार प्रदान किया गया। **डॉ. दीपक जाधव** को जैन गणित विषयक शोध कार्य के लिए कुन्द–कुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर, द्वारा भी पुरस्कार प्रदान किया गया।

22 अप्रैल को श्री कुन्द–कुन्द भारती ट्रस्ट, नई दिल्ली, द्वारा आचार्य श्री विद्यानन्द जी की जन्मजयंती के पुनीत अवसर पर 'आचार्य नेमीचंद्र सिद्धांत चक्रवर्ती पुरस्कार' **'वीर'** के सम्पादक मेरठ निवासी, 81–वर्षीय, **श्री राजेन्द्र कुमार जैन** को प्रदान किया गया। वह विगत 50 वर्षो से सामाजिक कार्यो में अग्रणी भूमिका निभा रहे हैं।

25 अप्रैल को हुमंचा पद्मावती तीर्थ के भट्टारक **स्वस्तिश्री देवेन्द्र कीर्ति जी** को उनके शोध कार्य "सम्यक्त्व कौमुदी – एक तुलनात्मक अध्ययन" पर मैसूर विश्वविद्यालय ने पी–एच.डी. की उपाधि प्रदान की।

जनवरी में ओरछा में सम्पन्न राष्ट्रीय बुन्देली साहित्य सम्मेलन में भोपाल के **श्री कैलाश मड़वैया** को 'शांति देवी जैन साहित्य राष्ट्रीय पुरस्कार' बुन्देली साहित्य में महत्वपूर्ण अभिदान के लिए प्रदान किया गया। उनके लेखन पर अनुसंधान के लिए **श्री कदीर खां** को जीवाजी विश्वविद्यालय, ग्वालियर, द्वारा पी–एच.डी. की डिग्री प्रदान की गई।

उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान द्वारा **श्री सूर्य कुमार पाण्डेय** को 'बाल साहित्य सम्मान' प्रदान किया गया।

उत्तर प्रदेश संस्कृत संस्थान द्वारा **श्री काशीनाथ गोपाल गोरे** को उनके संस्कृत में रचित महाकाव्य **श्रीमदनिरुद्धायनम् चरित** पर तथा **डॉ. विजय कुमार जैन** को प्राकृत साहित्य से संबंधित उनकी कृति **प्राकृत सौरभ** पर पुरस्कार द्वारा सम्मानित किया गया।

डॉ. सुबोध, श्री आलेक और श्री अजित जैन ने अवगत कराया है कि 28 जून को नागपुर के आकाशवाणी के समीप स्थित स्वागत लॉन में **डॉ. भागचन्द्र जैन 'भास्कर'** का जीवन के 75 वर्ष ससम्मान

अध्ययन–अध्यापन–लेखन में रत रहते हुये जीने के लिए 'अमृत महोत्सव' भव्य रूप से, विद्वत् समुदाय के सान्निध्य में, आयोजित किया गया। उनके द्वारा लिखित ग्रन्थों और उनके सम्मान में प्रकाशित **गौरव ग्रन्थ** का लोकार्पण किया गया। उन्होंने एक पारिवारिक ट्रस्ट के शैक्षणिक, सामाजिक और आध्यात्मिक विकास के कार्यों के लिए स्थापित करने का निश्चय भी घोषित किया। उनकी पत्नी, विदुषी **डॉ. पुष्पलता जैन** का भी सम्मान किया गया।

शोधादर्श का समस्त परिवार और तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति उपरोक्त सभी महानुभावों का उनकी यश–वृद्धि के लिए हार्दिक अभिनन्दन करते हैं।

शोक संवेदन

4 जनवरी 2014 को **प्रो. नगीनदास जीवंनलाल शाह** का स्वर्गवास हो गया। उनका जन्म 13 जनवरी 1931 को हुआ था। वे संस्कृत, प्राकृत और गुजराती के लब्ध–प्रतिष्ठ विद्वान थे। वह लालभाई दलपतभाई इन्स्टीट्यूट आफ इण्डोलॉजी, अहमदाबाद, में विभिन्न पदों पर कार्यरत रहे और अन्ततः 1991 में निदेशक के पद से सेवानिवृत्त हुये। उनकी स्मृति में उक्त इन्स्टीट्यूट ने स्मृतिग्रंथ के रूप में अपनी पत्रिका **सम्बोधी** का 2014 का अंक 37 प्रकाशित किया है और इस प्रकार उनके प्रति अपनी श्रद्धांजलि अर्पित की है। उनकी बहुमूल्य उपलब्धियों का उल्लेख उसमें किया गया है।

2015 में, 5 जनवरी को पंचबालयति मंदिर इन्दौर में प्रतिष्ठाचार्य **पं. गुलाबचंद्र पुष्प** का समाधिमरण हो गया। वह प्रतिष्ठाचार्य ब्र. जय कुमार निशान्त, टीकमगढ़, के पिता थे। उनका जन्म ककरवाहा में 10 जुलाई 1914 को हुआ था।

पार्श्वनाथ विद्यापीठ, वाराणसी, के पूर्व मानद मंत्री **श्री भूपेन्द्र नाथ जैन** का फरीदाबाद में दिनांक 19 जनवरी को निधन हो गया। उनका जन्म 8 नवम्बर 1918 को अमृतसर में हुआ था। वह पार्श्वनाथ विद्यापीठ के मानद मंत्री 1975 से 2000 तक रहे। विद्यापीठ की त्रैमासिक शोध पत्रिका **श्रमण** का जनवरी–मार्च 2015 का अंक उनकी स्मृति को समर्पित है।

1 फरवरी को **शोधादर्श** के आजीवन अभिदाता और अहिंसा इण्टर नेशनल के संस्थापक, 84–वर्षीय **श्री सतीश कुमार जैन** का दिल्ली में निधन हो गया।

9 फरवरी को डॉ. रमेशचन्द्र जैन के पिताजी **श्री सिंघई शिखरचंद जैन सौंरया** का देहावसान 89 वर्ष की आयु में निरोगावस्था में हो गया। उनकी स्मृति में उनके सुपुत्रों ने बुरहानपुर से प्रकाशित **पार्श्व ज्योति** का अप्रैल 2015 का अंक विशेषांक के रूप में प्रकाशित किया।

23 फरवरी को लखनऊ में स्मृतिशेष श्री अजित प्रसाद जैन की ज्येष्ठ पुत्रवधु सुश्राविका **श्रीमती किरण जैन** का लखनऊ में निधन हो गया।

10 मार्च को **शोधादर्श** के सुधि पाठक और लेखक **डॉ. महावीर प्रसाद जैन 'प्रशांत'** का लखनऊ में देहावसान हो गया। वह 90 वर्ष के थे और विगत 3 वर्ष से शैयाग्रस्त थे। उनकी रचनाएं **शोधादर्श** में प्रकाशित होती रही हैं। वह श्रद्धेय डॉ. ज्योति प्रसाद जैन के प्रति विशेष श्रद्धास्पद थे।

25 मार्च को हमारी समिति के कोषाध्यक्ष श्री बिजय लाल जैन के कनिष्ठ जामाता **श्री प्रतुल जैन** का बाराबंकी में दीर्घ अस्वस्थता के बाद निधन हो गया।

9 जून को मुजफ्फरनगर में वयोवृद्ध विद्वान श्री वेद प्रकाश गर्ग की पत्नी, 82–वर्षीया **श्रीमती कृष्णा देवी** का देहावसान हो गया।

14 जून को दिल्ली में **शोधादर्श** के सुधि पाठक श्री श्रीनारायण अग्रवाल की पत्नी, 80–वर्षीया, **श्रीमती रमा अग्रवाल** का दीर्घ कालीन अस्वस्थता के बाद शरीर शांत हो गया।

उपरोक्त सभी दिवंगत महानुभावों के प्रति शोधादर्श परिवार की भावभीनी श्रद्धांजलि अर्पित है और शोक से संतप्त परिवारों के प्रति हार्दिक संवेदना निवेदित है।

– नलिन कान्त जैन

✧✧✧

समाचार विविधा

भद्दिलपुर तीर्थ

23 फरवरी 2015 को भारतीय डाक विभाग के बिहार परिमण्डल द्वारा भद्दिलपुर तीर्थ की पुनर्स्थापना के सन्दर्भ में विशेष आवरण सीतामढ़ी (बिहार) में जारी किया गया।

तमिलनाडु में जैन सम्प्रदाय को अल्पसंख्यक की मान्यता

तमिलनाडु सरकार ने दिनांक 12 मार्च को जैन सम्प्रदाय को भी मुसलमानों, ईसाइयों, सिक्खों, बौद्धों और पारसियों के समान अल्पसंख्यक समुदाय की मान्यता प्रदान कर दी।

श्री अगरचंद नाहटा की 105वीं जयंती

19 मार्च को **श्री अगरचंद नाहटा** (1911–1983) की 105वीं जयंती पर 'अभय जैन ग्रन्थालय', नाहटा मोहल्ला, बीकानेर, में विशेष कार्यक्रम आयोजित किया गया और इस अवसर पर भारतीय डाक विभाग के राजस्थान परिमण्डल द्वारा विशेष आवरण जारी किया गया।

महावीर जयंती

लखनऊ में 2 अप्रैल को श्री वर्धमान स्थानकवासी जैन सभा के तत्वावधान में श्री महावीर जैन साधना केन्द्र में **भगवान महावीर जयंती समारोह** का आयोजन डॉ. शशि कान्त जैन की अध्यक्षता में किया गया। श्री लूण करण नाहर जैन और उनके परिवार का इस आयोजन में विशेष योगदान था। भक्ति प्रेरित भजनों का विशेष कार्यक्रम था। अध्यक्ष के अतिरिक्त श्री शैलेन्द्र जैन, श्री कला कुमार और श्री विराट जैन ने भगवान महावीर की शिक्षाओं के आधार से राष्ट्रीय और सामाजिक जीवन में समन्वय और सद्भाव को प्रसारित करने का आग्रह किया। आकाशवाणी, लखनऊ, द्वारा भी इस कार्यक्रम का प्रसारण किया गया।

जबलपुर से **श्री आनन्द कुमार जैन** ने समाज द्वारा इस पर्व की अपने प्रतिष्ठानों को खुले रखकर अवमानना करने से व्यथित होकर एक परिपत्र प्रसारित किया है। अपनी व्यथा को व्यक्त करते हुये उन्होंने यह तंज किया है कि यदि जैन समाज के लोग महावीर जयंती पर्व पर अपने प्रतिष्ठान कार्यालय, होटल, रेस्टोरेंट आदि को बन्द नहीं रख सकते हैं तो क्यों न सरकार द्वारा महावीर जयंती के सार्वजनिक अवकाश को समाप्त करा दिया जाये। समाज की पत्र–पत्रिकाओं, संस्थाओं और नेतृत्व द्वारा इस सम्बन्ध में गम्भीरतापूर्वक विचार किया जाना अपेक्षित है कि यदि समाज स्वयं अपने आराध्य भगवान का समुचित समादर नहीं कर सकता

है तो उसे राष्ट्रीय स्तर पर किसी प्रकार का अनुग्रह प्राप्त करने का क्या औचित्य है।

अखिल भारतीय जैन पत्र सम्पादक संघ

दिनांक 12 अप्रैल को श्री पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र, करगुवांजी, झांसी, में अखिल भारतीय जैन पत्र सम्पादक संघ का अधिवेशन श्री रवीन्द्र मालव की अध्यक्षता में सम्पन्न हुआ। अन्य कार्यवाही के अतिरिक्त यह भी निश्चय किया गया कि आगामी दिनों में पत्रकारिता के क्षेत्र में विभिन्न विधाओं में लेखन के लिए आचार्य श्री कुन्द–कुन्द, क्षुल्लक श्री गणेश प्रसाद वर्णी, ब्र.श्री सीतल प्रसाद जी, पं. जुगल किशोर मुख्तार, पं. कैलाश चंद सिद्धांतशास्त्री, पं. परमेष्ठी दास, पं. नाथूलाल शास्त्री, श्री श्यामलाल पाण्डवीय, डॉ. ज्योति प्रसाद जैन और श्री अक्षय कुमार जैन के नाम धारित सम्मान/पुरस्कार प्रदान किये जायेंगे।

श्री अहिच्छत्रा तीर्थ

श्री अहिच्छत्रा तीर्थ पर 23 अप्रैल को श्री अहिच्छत्रा पार्श्वनाथ जैन श्वेताम्बर पेढ़ी द्वारा पुनर्स्थापित जिनालय की 10वीं वर्षगांठ पर भारतीय डाक विभाग के उत्तर प्रदेश मण्डल, लखनऊ, द्वारा विशेष आवरण जारी किया गया।

सिद्धायतन

सम्मेदशिखर में अत्याधुनिक सुख–सुविधाओं से भरपूर आत्मसाधना केन्द्र **सिद्धायतन** का निर्माण हो रहा है। लार्ड पार्श्वनाथ फाउण्डेशन, द्वितीय तल, 10, प्रिन्सेस स्ट्रीट, कोलकाता–72 द्वारा यह विज्ञापित किया गया है कि सिद्धायतन अप्रैल 2016 से चालू हो जायेगा।

श्री करुणा फाउण्डेशन ट्रस्ट, राजकोट

जीवदया के क्षेत्र में यह संस्था विगत एक दशक से पशु–पक्षियों के उपचार के कार्य में लगी है। इसके ट्रस्टी श्री मितल खेतानी और श्री प्रतीक संघानी हैं जिनसे नेमिनाथ इण्टरप्राइज़, 9, पंचनाथ प्लॉट, पंचनाथ मंदिर के पीछे, राजकोट–360001, पर सम्पर्क किया जा सकता है।

करुणा अंतर्राष्ट्रीय, चेन्नई

वर्ष 1995 में चेन्नई में भारतीय जीव–जन्तु कल्याण बोर्ड से मान्यता प्राप्त कर **करुणा अंतर्राष्ट्रीय** संस्था के अंतर्गत शिक्षण संस्थानों में करुणा क्लबों का गठन करके विद्यार्थियों में अहिंसा, करुणा एवं मानव मूल्यों के प्रचार–प्रसार का कार्य किया जा रहा है। इस संस्था का

कार्यालय मुनोत सेन्टर, 343, ट्रिप्लीकेन हाई रोड, चेन्नई–600005 में है। इसके चेयरमैन श्री दुलीचंद जैन है और महामंत्री श्री सुरेश कांकरिया हैं।

ब्यूटी विदाउट क्रूएल्टी, पुणे

1975 में पुणे में प्राणी अधिकारों के लिए अन्तर्राष्ट्रीय शैक्षणिक धर्मार्थ ट्रस्ट के रूप में **Beauty Without Cruelty** की स्थापना की गई थी। इसका पता 4, प्रिन्स आफ वेल्स ड्राइव, वानवाडी, पुणे–411040 है। इस संस्था द्वारा प्राणी अहिंसा के क्षेत्र में महत्वपूर्ण कार्य किये गये हैं। इसके फलस्वरूप कई स्थानों पर बलि प्रथा पर रोक लगाई गई और भारत से गोमांस के निर्यात पर रोक लगाये जाने का प्रयत्न भी किया गया।

अमन चेरिटेबुल ट्रस्ट, लखनऊ

वर्ष 2000 में श्री धर्मवीर, सेवानिवृत्त प्रमुख अभियंता, सार्वजनिक निर्माण विभाग, उत्तर प्रदेश, द्वारा **अमन चेरिटेबुल ट्रस्ट** की स्थापना की गई थी। श्री धर्मवीर तथा उनके परिवार और निकट सम्बन्धियों द्वारा 30 लाख रु. से अधिक का दान इस ट्रस्ट में विभिन्न धर्मार्थ कार्यो के लिए दिया गया। इसके कार्यकलापों में इंजीनियरिंग एवं अन्य उच्च व्यावसायिक शिक्षा के विद्यार्थियों को आर्थिक सहायता प्रदान की जाती है। विभिन्न गुरुकुलों और आश्रमों के छात्रों को भोजन वितरण के लिए और निर्धन छात्रों को पुस्तक व कापी वितरण के लिए अनुदान दिया जाता है। प्रधानमंत्री सहायता कोष में अंशदान किया जाता है। निःशुल्क दवा वितरण के लिए और विकलांग लोंगों की सहायता के लिए भी संस्थाओं को अनुदान दिया जाता है। विधवाओं और अनाथ बच्चों की सहायता के लिए भी आर्थिक सहायता प्रदान की जाती है तथा पशु पक्षियों के लिए दयालुता सम्बन्धी संस्थाओं को भी आर्थिक अंशदान दिया जाता है। इस ट्रस्ट के माध्यम से श्री धर्मवीर और उनका परिवार जो समाज सेवा का कार्य कर रहे हैं उसके लिए वे अभिनन्दनीय है।

✧✧✧

पाठकों के पत्र

श्री अजित प्रसाद जैन, रेवाड़ी

शोधादर्श–80 पत्रिका प्राप्त हुई। आपने **मानवधर्म** व **इष्टोपदेश** की समीक्षा छापी है, हम आपके अत्यंत आभारी हैं।

निवेदन है कि आप साहित्य सत्कार में जो समीक्षाऐं छापते हैं उनके साथ प्राप्तिस्थल का फोन नम्बर व ई–मेल पता भी देने की कृपा करें। पता आप देते ही हैं। किसी को पुस्तक मंगवानी हो तो उससे आसानी हो जाती है।

डॉ. (श्रीमती) उषा जैन, बिजनौर

पत्रिका में प्रकाशित लेख ज्ञानवर्द्धक होते हैं। और सारी सामग्री भी अच्छी और सराहनीय होती हैं। आप अच्छा सम्पादन कर रहे हैं।

डॉ. उषा माथुर, लखनऊ

नए कलेवर वाली **'शोधादर्श'** पत्रिका का अंक 80 दिसंबर 2014 मिला। राजीव कान्त जैन द्वारा रचित कविता 'रे मन क्यों व्यथित' सुन्दर बन पड़ी है। राजीव कान्त दिन प्रतिदिन प्रतिष्ठित कवियों में अपना स्थान सुनिश्चित करने की ओर अग्रसर हो रहे हैं, बधाई!

चाचा जी (स्व. श्री अजित प्रसाद जैन) का "राजा शिव प्रसाद (जैन) 'सितारे हिंद'" शीर्षक लेख पढ़ा। इस सन्दर्भ में हमें अपने विचार रखने की अनुमति दें। देश–विदेश में बहुप्रतिष्ठित हिन्दी साहित्यकारों में – जिनके लिखे हिन्दी–साहित्य के इतिहास, विदेशी विश्वविद्यालयों तक के पाठ्यक्रम में स्वीकृत हैं – आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, डॉ. धीरेन्द्र वर्मा, व्रजेश्वर वर्मा, रामस्वरूप चतुर्वेदी, डॉ. रघुवंश, डॉ. रामकुमार वर्मा आदि ने अपने हिन्दी साहित्य के इतिहास ग्रंथों में 'राजा शिव प्रसाद सितारे हिन्द' के व्यक्तित्व और कृतित्व का उल्लेख करते हुए उन्हें परमार वंशीय क्षत्रिय कहा है। उनके पितामह मुर्शिदाबाद से आकर काशी में बस गए थे। शिव प्रसाद का जन्म काशी में 1823 ई. में हुआ। उन्हें हिन्दी, उर्दू, फारसी, संस्कृत, अंग्रेजी और बंगला भाषा का अच्छा ज्ञान था। 1845 ई. में उन्होंने सरकारी नौकरी करनी शुरू की। तीसरे सिक्ख युद्ध में उन्होंने अंग्रेजों की सहायता की और शीघ्र ही सरकारी स्कूलों में स्कूल इंस्पेक्टर बन गए। शिक्षा विभाग में रहकर उन्होंने 'मानव धर्म सार', 'योगवाशिष्ट के कुछ चुने हुए श्लोक', 'उपनिषद सार', 'भूगोल हस्तामलक', 'स्वयं बोध उर्दू', 'विद्यांकुर', 'आलसियों का कोड़ा', 'इतिहास तिमिर नाशक' (भाग1,2,3), 'सिखों का

उदय और अस्त', 'हिन्दी व्याकरण', 'लड़कों की कहानी' आदि अनेक पुस्तकें लिखीं। 'हिन्दी व्याकरण' हमारे पास है। 1872 ई. में अंग्रेज सरकार ने उन्हें सी.एस.आई. की उपाधि दी। 1887 ई. में उन्हें 'राजा' की सम्मानित उपाधि मिली। 23 मई 1895 ई. में काशी में उनका अंतकाल हुआ। 1845 ई. में उन्होंने 'बनारस अखबार' निकाला, वह लीथो प्रेस में छपता था। यह हिन्दी का प्रथम अखबार नहीं था। इससे पूर्व 1817–19 ई. के मध्य 'दिग्दर्शन' और 1826–27 ई. के मध्य कलकत्ते से आचार्य जुगल किशोर ने 'उदंतमार्तंड' निकाला। ये समाचार पत्र नेशनल लाइब्रेरी, नेशनल आरकाइव्ज़ तथा भोपाल में माखनलाल चतुर्वेदी पुस्तकालय में उपलब्ध हैं।

'बेटों के बाप' शीर्षक कविता में अमरनाथ जी को यह जोड़ना था कि बेटी यदि सहेली के घर से देर रात में लौटे तो उससे सैंकड़ों प्रकार के प्रश्न पूछे जाते हैं और यदि बेटे देर रात घर लौटें तो उनसे कोई यह पूछना तो दूर कि तुम इतनी देर कहां रहे, तुम्हारे दोस्त का क्या नाम है, वह और उसके पिता क्या करते हैं आदि, इतना अवश्य होता है कि उसके खाना मांगने पर उसे ताना मारा जाता है कि दोस्त ने तुम्हें रात का खाना नहीं खिला दिया, आदि।

(राजा शिव प्रसाद **अग्रवाल नहीं वरन् ओसवाल जाति के थे** और उनका गोत्र गोखरू था। मुंशी नवल किशोर भार्गव के प्रेस से प्रकाशित उनके ग्रन्थ **भाषा कल्पसूत्र** की प्रस्तावना में उनके द्वारा स्वयं 'कुछ बयान अपने खानदान का और कारण इस ग्रन्थ के छपने का' में बताया गया है कि रणथम्भौर में सम्वत् 1045 में परमार वंशी शाखेश्वरी श्रेष्ठि धांधल हुये थे। जैन यति श्री जयप्रभसूरि के प्रतिबोध के फलस्वरूप उन्हें पुत्र प्राप्त हुआ था जिसका नाम उन्होंने गोखरू रखा और उसी से **गोखरू गोत्र** चला। सम्वत् 1081 में उन्होंने देहरा यानि श्वेताम्बर मंदिर बनवाया जिसकी प्रतिष्ठा श्री जयप्रभसूरि ने कराई। इस प्रस्तावना से विदित होता है कि वे ओसवाल वंश के गोखरू गोत्र के वंशज थे और मंदिरमार्गी श्वेताम्बर जैन धर्म के अनुयायी थे। उनके समकालीन श्री एम.अचीरिंग ने लंदन में 1872 ई. में अपने निबन्ध The Hindu Tribes and Castes as represented in Benares में भी यह उल्लेख किया है कि बाबू शिव प्रसाद बनारस की ओसवाल जाति के एक प्रतिष्ठित व्यक्ति थे और वे जैन धर्मावलम्बी थे।

हमें विस्मय हुआ कि हिन्दी साहित्य के जिन महान इतिहासकारों का उल्लेख उषा जी ने किया है, उन्होंने राजा शिव प्रसाद के सम्बन्ध में कुछ लिखने से पहले सही जानकारी प्राप्त करने का कष्ट नहीं उठाया।

'बनारस अखबार' से पूर्वतर हिन्दी अखबारों की सूचना देने के लिए और राजा शिवप्रसाद के भी कुछ ग्रन्थों के नाम देने के लिए उषा जी को धन्यवाद! – शशि कान्त)

डॉ. ए.एल. श्रीवास्तव, भिलाई

शोधादर्श–80 प्राप्त हुआ, धन्यवाद! सामान्य स्तंभों के अतिरिक्त इस अंक के कई लेख ऐसे हैं जो विशिष्ट हैं, उल्लेखनीय हैं। सर्वाधिक महत्वपूर्ण लेख 'खन्दारगिरि की जैन गुफाएं' (श्री अजीत प्रताप सिंह) है। वहां प्राप्त 6 शैलकृत गुफाओं में जैन मूर्तिकला–सम्बन्धी कई विवेचनीय साक्ष्य हैं जिनका विधिवत प्रकाशन और विश्लेषण आवश्यक है। लेख पढ़ने से ऐसा कोई संकेत नहीं मिला है कि लेखक ने खन्दारगिरि का भ्रमण किया हो। इस लेख को संभवतः हरिहर निवास द्विवेदी और बलभद्र जैन की कृतियों के आधार पर तैयार किया गया है। तथापि लेख महत्वपूर्ण है और लेखक प्रशंसनीय है। इस लेख में मूर्तिशिल्प के दो बिन्दु विवेचनीय हैं। एक – गुफा सं. 3 और 4 में तीर्थंकर के दोनों पार्श्वों में गजारूढ़ चामरवाहकों का खड़ा होना। गज के ऊपर चामरवाहकों का खड़ा होना सन्देहास्पद है। यदि ऐसा है तो विस्मयकारी है और विश्लेषणीय भी। दूसरा बिन्दु गुफा सं. 5 में बाहुबली की कटि तथा जांघों पर सर्पो का लिपटना, उनके वक्ष से नाभि तक दो चूहे बने होना और भुजाओं पर छिपकलियां होना। मेरे संज्ञान में बाहुबली के एकाग्र ध्यानस्थ तपस्यारत रहने से उनके पैरों के निकट दीमक के ठीकरे (ant-hill) से उगी लता–वल्लरियां उनकी जंघाओं और भुजाओं में लिपट गयी थीं। इस प्रकार का अंकन उनकी मूर्तियों में अंकित पाया गया है। खन्दारिगरि की गुफाओं वाले बाहुबली के स्वरूप का साक्ष्य अनुसंधनीय है।

'सेवा के नाम पर घोटाला' (श्री भूरचन्द जैन), 'शिथिलाचार के प्रति जागरुकता अपेक्षित' (श्री रवीन्द्र मालव), 'परिग्रह से कैसी प्रभावना' (श्री अजित जैन 'जलज') आदि लेख चिन्तनीय और विचारणीय हैं। इनमें व्यक्त विषयों में सुधारपरक दृष्टिकोण की अपेक्षा है।

काव्य रचनाओं में डॉ. परमानन्द जड़िया के 'सप्तचिन्तन–कण' में कतिपय पंक्तियां विशिष्ट और उल्लेखनीय हैं, यथा – विश्व का केवल नियंता एक है, यों तो 'जड़िया' मत–मतान्तर हैं कई लक्ष्य अंतिम जो, सभी का एक है, वेद ही प्राचीनतम साहित्य है, आदि। **शोधादर्श** के आवरण पृष्ठों पर कलावशेषों के चित्र प्रकाशित करने की परंपरा उत्कृष्ट सम्पादन–कला की साक्षी है।

शोधादर्श–79 में प्रकाशित मेरा लेख 'जैन मूर्तिकला में गण विघ्नेश' श्री बी.डी. अग्रवाल (लखनऊ) तथा डॉ. राजेन्द्र कुमार बंसल (अमलाई) को अच्छा लगा, एतदर्थ मैं दोनों महानुभावों के प्रति आभार प्रकट करता हूं।

श्री बी.डी. अग्रवाल, लखनऊ

शोधादर्श–80 के अवलोकन से आभास हुआ कि पत्रिका दिन पर दिन परिष्कृत हो रही है। लेखों व कविताओं के चयन में कितना परिश्रम किया गया है इसका अनुमान उनके अध्ययन से लगता है। इस अंक को यदि जैन स्थापत्य विशेषांक कहा जाये तो उचित होगा। आपका लेख "जैन स्थापत्य" तथा डॉ. (श्रीमती) निधि जौहरी का शोध सारांश "जैन मंदिरों की स्थापत्य कला" वास्तव में दुर्लभ सामग्री तथा बोधगम्य आकर्षक लेखन शैली का प्रतिनिधित्व करते हैं।

डॉ. परमानन्द जड़िया, लखनऊ

शोधादर्श–80 : मुख पृष्ठ पर महावीर मंदिर का चित्र मन भावन है। कवर पेज दो तथा तीन के चित्र भी पुरातात्विक दृष्टि से महत्वपूर्ण तथा सुन्दर हैं। राजा शिव प्रसाद 'सितारे हिन्द' के विषय में हिन्दी साहित्य के इतिहास में पढ़ा करता था, परन्तु यह नहीं मालूम था कि वे जैन थे। इस लेख में उनका विस्तृत परिचय दिया गया है। इस लेख से स्वनामधन्य अजित प्रसाद जैन की याद भी ताजा हो गयी।

डॉ. (श्रीमती) निधि जौहरी का लेख "जैन मंदिरों की स्थापत्य कला" शोधपूर्ण है (वह हमारे पड़ोस की हैं यह मुझे नहीं मालूम था)। श्री रवीन्द्र मालव की शिथिलाचार के प्रति चिन्ता वर्तमान भ्रष्ट समाज की देन है। श्री अमर नाथ की कविता बहू तथा बेटी के प्रति समाज की रुग्ण मानसिकता पर व्यंग्यात्मक प्रहार है। श्री आवारा नवीन के छन्द 'श्री नरेन्द्र मोदी जी के प्रति ' तथा श्री राजीव कान्त जैन की कविता "रे मन क्यों व्यथित" कुछ सोचने को विवश करते हैं। राजीव कान्त ने जहां जीवन के सत्य की ओर संकेत किया है वहीं नवीन जी ने अपने छन्द में सामयिक चेतावनी दी है। डॉ. ए. एल श्रीवास्तव का लेख "आचार्य तुलसी की अनुपम देन अणुव्रत" अच्छा लगा।

प्रो. प्रकाशचन्द्र जैन, टीकमगढ़

आपकी पत्रिका के मुख पृष्ठ एवं अंदर के अंतिम पृष्ठ पर दिये गये चित्र अनमोल होते हैं। ग्यारसपुर के मालादेवी मंदिर में विराजमान प्रतिमाओं के दर्शन नहीं हो पाते हैं, कारण कि शिखर का कुछ भाग क्षतिग्रस्त हो गया है, व पुरातत्व विभाग के वहां उपस्थित कर्मचारी के अनुसार वह कभी भी ढह सकता है। उसी कर्मचारी ने मुझे बताया कि इस मंदिर की मरम्मत हेतु कोई भी पुरातत्वीय अधिकारी अपनी जिम्मेदारी नहीं लेना चाहता। इस जिनालय में खड्गासन व पद्मासन में भव्य प्रतिमायें विराजमान हैं।

श्री मगन लाल जैन, लखनऊ

शोधादर्श में लेख आदि पढ़ने से बहुत सी पुरानी यादें आने लगती हैं। क्या बाबू जी और रमा कान्त का समय था? बहुत सी नई बातें संज्ञान में आ जाती हैं, बहुत अच्छा लगता है। बहुत सी गोष्ठियों में जानकारी न होने के कारण या अन्य कार्य से व्यस्त रहने के कारण सम्मलित नहीं हो पाता हूं। लेकिन जानकारी मिल जाती है। आपके पिता जी की भांति मैं भी 80 वर्ष की आयु पूरी कर चुका हूं।

डॉ. (श्रीमती) ममता जैन, पुणे

मैं **शोधादर्श** के सुरुचिपूर्ण सादगी–सम्पन्न कलेवर एवं गुण–सम्पन्न हार्द से बहुत प्रभावित हूं। आपने लेखों का चयन, सामग्री का प्रस्तुतिकरण एवं सभी विधाओं का समुचित सम्मिश्रण कर **शोधादर्श** को चिरनवीन रखा है।

मैंने "उत्तर प्रदेश में पत्रकारिता उपलब्धि और मूल्यांकन" पर शोध किया है और उसमें **शोधादर्श** का उल्लेख किया है।

श्री ललित कुमार नाहटा, नई दिल्ली

आप द्वारा प्रेषित **शोधादर्श** मिलती है व मुझे उसकी प्रतिक्षा भी रहती है। मैं आपकी निष्पक्ष, निर्भीक व स्पष्टवादी प्रकाशित सामग्री से प्रभावित हूं।

श्री श्रीकिशोर जैन, दिल्ली

शोधादर्श अंक 80 देख कर हम बड़े प्रमुदित हुए। जिस वीर सेवा मंदिर का आपने गुरुगुण–कीर्तन किया और मुख्तारजी के बारे में भावभीना परिचय दिया, उसकी कार्यकारिणी में संयोग से मेरा नाम है। उनके प्रचार–प्रसार के लिए क्या करना चाहिए, कोई ठोस विचार के लिए आपके परामर्श की आकांक्षा है।

पं. सरमन लाल जैन 'दिवाकर', सरधना (मेरठ)

मैं लगभग 6 माह से अस्वस्थ्य चल रहा हूं। मेरी आयु लगभग 80 वर्ष है फिर भी धर्मार्थ कार्यो में व्यस्त रहता हूं। आपके द्वारा प्रेषित **शोधादर्श 80** प्राप्त हुआ। पढ़ा एवं धर्म प्रेमी बन्धुओं को पढ़ने की प्रेरणा दी। सम्पादकीय लेख विशेष प्रयोजनीय हैं। गुरुगुण–कीर्तन में जैन साहित्य संसार के भीष्म पितामह की लगभग 80 प्रतिशत जैन लोगों को जानकारी नहीं हैं, वह इससे मिलती है। यह लेख पठन के बाद स्मरणीय है। 'जैन धर्म की प्राचीनता' – डॉ. ज्योति प्रसाद जैन द्वारा लिखित – की वर्तमान युवावर्ग मनीषी लोगों को जानकारी ही नहीं है जो इस लेख से प्राप्त हुयी। खन्दारगिरि स्थित गुफाओं की दुर्लभ जानकारी श्री अजीत प्रताप सिंह के लेख से मिली। "सेवा के नाम पर घोटाला निन्दनीय" श्री भूरचन्द जैन का लेख वर्तमान परिस्थितियों का दिग्दर्शन कराता है।

✧ ✧ ✧

शोधादर्श के आजीवन अभिदाता

1 श्री अवनीश गर्ग जैन एवं श्रीमती रेखा गर्ग, लखनऊ–226001
2 डॉ. आर. के. अग्रवाल, लखनऊ–226012
3 डॉ. (श्रीमती) इन्दु रस्तोगी, लखनऊ–226010
4 डॉ. एस.के. जैन, लखनऊ–226010
5 श्री कमल सिंह रामपुरिया, हावड़ा–711101
6 डॉ. (श्रीमती) कुसुम पटोरिया, नागपुर–440001
7 श्री के.एस. पुरोहित, गांधी नगर–382009
8 प्रो. के.डी. मिश्रीकोटकर, चांदुर बाजार–444704
9 श्री चक्रेश जैन, इन्दौर–452018
10 श्री ब्र. जयनिशान्त जैन, टीकमगढ़–472001
11 डॉ. जितेन्द्र बी. शाह, अहमदाबाद–380001
12 श्री प्रद्युम्नश्री महाराज (द्वारा श्री जितेन्द्र कापड़िया), अहमदाबाद–380007
13 श्री प्रवीन कुमार जैन, नई दिल्ली–110002
14 मुनिश्री प्रमाणसागरजी (द्वारा श्री संतोषकुमार जयकुमार),सागर–470002
15 श्री भरत कुमार मोदी, इन्दौर– 452001
16 श्री माणिक चन्द्र जैन लुहाड़िया, कुन्दकुन्द नगर, सोनागिर–475686
17 श्री रूप चन्द जैन कटारिया, नई दिल्ली–110001
18 श्री ललित सी. शाह, अहमदाबाद–380014
19 मुनिश्री विमलसागर जी (द्वारा डॉ. शैलेन्द्र हरण जी), उदयपुर–313001
20 श्री विवेक काला, जयपुर–302004
21 श्री वीरेन्द्र कुमार जैन, गाजियाबाद–201010
22 श्री मुकेश जैन, एडवोकेट, मुजफ्फरनगर–251002
23 श्री वेद प्रकाश गर्ग, मुजफ्फरनगर– 251002
24 श्री शान्तीलाल जैन बैनाड़ा, आगरा–282002
25 श्री श्रीकिशोर जैन एवं श्री शरद कुमार जैन, दिल्ली–110051
26 श्री ब्र. सन्दीप सरल, बीना–470113
27 श्री सुरेन्द्र कुमार जैन, भगवां–411313
28 श्री सुरेश चन्द्र जैन, मसूरी–248179
29 श्रीमती त्रिशला जैन शास्त्री, लखनऊ–226004
30 श्री ज्ञानेन्द्र मोहन सिन्हा, लखनऊ–226006

वर्ष 2015 का वार्षिक शुल्क प्रदायी पाठक

1 श्री अजित जैन 'जलज', टीकमगढ़
2 श्री अजीत प्रताप सिंह, निगोहां
3 अपभ्रंश साहित्य एकेडेमी, जयपुर
4 श्री इन्द्र कुमार साटीया, हुबली (2020 तक)
5 डॉ. (श्रीमती) उषा जैन, बिजनौर (2018 तक
6 श्री कैलाश नारायण टण्डन, कानपुर
7 डॉ. चेतन प्रकाश पाटनी, जोधपुर
8 श्री दर्शन लाड, मुम्बई
9 डॉ. (श्रीमती) दीपा जैन, रनधेजा
10 श्री दुलीचंद जैन, चेन्नई (2016 तक)
11 श्री धनप्रकाश जैन, मेरठ
12 श्री पवन कुमार जैन, पुणे,
13 बी.एस.एम. (पी.जी.) कॉलेज, रुड़की
14 श्री मगनलाल जैन, लखनऊ (2019 तक)
15 श्री महेश नारायण सक्सेना, लखनऊ (2016 तक)
16 श्री विनय कुमार जैन, मशकगंज, लखनऊ
17 श्री संजय किशोर अग्रवाल, मुरादाबाद (2016 तक)
18 श्री हरिहर स्वरूप, लखनऊ

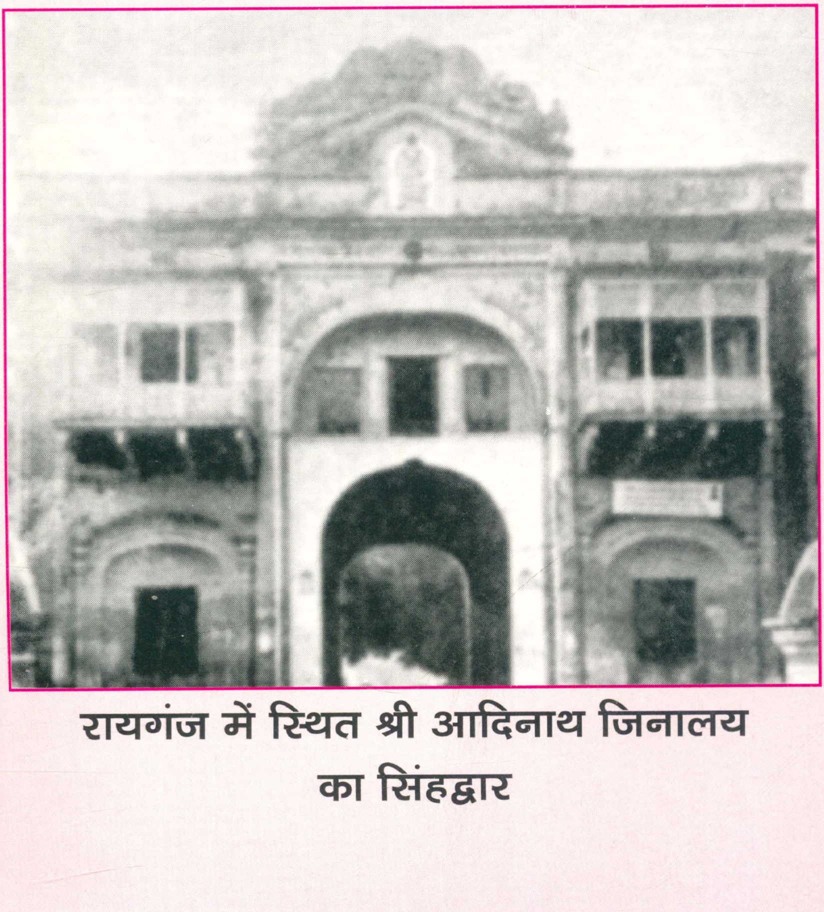

रायगंज में स्थित श्री आदिनाथ जिनालय
का सिंहद्वार